छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा
हिन्दी मासिक मुख पत्र
माह : फाल्गुन-चैत्र, संवत् 2079-80
मार्च 2023

ओ३म्

अंक 202, मूल्य 10

# अग्निदूत

अग्निं दूतं वृणीमहे. (ऋग्वेद)

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा नवसम्वतसर 2080 एवं
आर्यसमाज स्थापना दिवस व रामनवमी के
पावन अवसर पर समस्त प्रदेशवासियों एवं सुधि पाठकों को

## हार्दिक शुभकामनाएँ ।

रामनवमीं पर विशेष

# "अस्तु जियो मर्यादित जीवन"

**मर्यादा में है मानव जीवन का मधु–माधुर्य भरा ।**
**जीवन का रस है, सुगंध है, शिवम सत्य सौन्दर्य खरा ।।**

जो मर्यादा में रहके जीता, वह गरिमा–गौरव पाता ।
पुरुषो में पुरुषोत्तम, श्रद्धा भाजन बनता, पूजा जाता ।।
बड़ा सरल है सुविधाओं में मर्यादित होकर रह पाना ।
किन्तु कसौटी है, विपत्ति में मर्यादा से न डिग पाना ।।
जिसमें कुसमय में, विपदा में आत्म नियंत्रण है निखरा ।
जिसका जीवन ही खिलता है, शिवम् सत्य सौन्दर्य भरा ।।

राम, राज्य अभिषेक सूचना पाकर के भी रहे सहज ही ।
वन का आदेश मिला था, तब भी वैसे के वैसे ही ।।
उनकी मुख की मुस्काहट में कोई फर्क नजर नहीं आया ।
स्वीकारा सप्रेम सहज, मर्यादित रहकर उसे निभाया ।।
वचनों की मर्यादा रखी, सहज संतुलन योग धरा ।
वन में ऋषि मुनियों की रक्षा की, उनका दुःख दर्द हरा ।।

जब जीवन मर्यादा में बंधता, सौन्दर्य निखर आता है ।
मर्यादा से गिरते ही वह सब सुख–चैन बिखर जाता है ।।
राक्षसों के पास स्वर्ण था, किन्तु न थी उनमें मर्यादा ।
खाना, पीना, मौज उड़ाना, ही था जीवन में आमदा ।।
इससे ही अशान्ति, तम, तामस मय था, जीवन क्लेश भरा ।
पाश्चात्य जीवन शैली मेंहै प्रभाव इसका गहरा ।।

प्रकृति की प्रत्येक वस्तु है, जब तक मर्यादा में रहती ।
तब तक की कल्याण दायिनी होकर जन मन रंजन करती ।।
सीता, पवन, अग्नि की लपटें, विद्युत अउ परमाणु शक्तियां ।
मर्यादा तजते ही बनती, सर्वनाश की नृत्य–नरतियाँ ।।
असमय ही गहराती, लाती प्रलय दृश्य दुख–दर्द भरा ।
अस्तु जियो मर्यादित जीवन, शिवम् सत्य, सौन्दर्य भरा ।।

दयाशंकर गोयल, 1554–डी, सुदामा नगर, इन्दौर (म.प्र.)

# अग्निदूत

हिन्दी मासिक

राष्ट्रीय, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक, राजनीतिक विचारों की मासिक पत्रिका

विक्रमी संवत् – २०७९-२०८०
सृष्टि संवत – १,९६,०८,५३,१२३
दयानन्दाब्द – १९९

: प्रधान सम्पादक :
**आचार्य अंशुदेव आर्य**
प्रधान सभा
(मो. ७०४९२४४२२४)

: प्रबंध सम्पादक :
**श्री भुवनेश कुमार साहू**
मंत्री सभा
(मो. ७९७४००६५९४)

: सहप्रबंध सम्पादक :
**श्री दीपक कुमार पाण्डेय**
कोषाध्यक्ष सभा
(मो. ९९२६९९०५९१)

: सम्पादक :
**आचार्य कर्मवीर**
मो. ८१०३१६८४२४

पेज सज्जक : श्रीनारायण कौशिक

– कार्यालय पता –
छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा
दयानन्द परिसर, आर्य नगर,
दुर्ग (छ.ग.) 491001
फोन : (0788) 4031215
e-mail : chhattisgarhsabha@gmai.com

वार्षिक शुल्क–१००-दसवर्षीय–८००-



वर्ष - 18, अंक 4 — ओ३म — मास/सन् - मार्च 2023


श्रुतिप्रणीत-सिद्धधर्मवह्निरूपतत्त्वकं,
महर्षिचित्त-दीप्त वेद-सारभूतनिष्चयं ।
तदग्निसंज्ञकस्य दौत्यमेत्य सम्भ्रसम्भ्रकम्,
**सभाग्निदूत**-पत्रिकेयमादधातु मानसे ।।

## विषय - सूची


| क्र. | विषय | लेखक | पृष्ठ क्र. |
|---|---|---|---|
| 1. | इन्द्र सबसे महान् है | स्व. रामनाथ वेदालंकार | 04 |
| 2. | आर्यसमाज–स्वर्णिम अतीत धुंधला वर्तमान | आचार्य कर्मवीर | 05 |
| 3. | राज्य व शासन की उन्नति का मार्ग–वेदज्ञान | डॉ. बिजेन्द्रपाल सिंह | 08 |
| 4. | ऋषि दयानन्द क्या चाहते थे ? | मनमोहन कुमार आर्य | 11 |
| 5. | मृत्यु को ललकार | पं. रघुवीर शास्त्री | 14 |
| 6. | हर्ष एन्वं उल्लास का पर्व–होली | कृष्णचन्द टवाणी | 15 |
| 7. | आज श्रीराम के चित्र से अधिक चरित्र की जरुरत | श्रीमती सुकांती आर्या | 17 |
| 8. | आर्यसमाज में संख्यात्मक नहीं गुणात्मक विकास की आवश्यकता | मनुदेव अभय विद्यावाचस्पति | 20 |
| 9. | मुझसे ज्यादा खुशकिस्मत कौन होगा | साभार राजधर्म | 23 |
| 10. | माँ का सम्मान | साभार–प्रकाश हिन्दी कहानियां | 24 |
| 11. | अहंकार व संस्कार | स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक | 25 |
| 12. | धर्मवीर पंडित लेखराम | डॉ. भवानीलाल भारतीय | 26 |
| 14. | महर्षि की 200वीं जयन्ती पर | | 28 |
| 13. | माया की गठरी | महापुरुष वचनामृत | 29 |
| 15. | अबटु विकार (थायराइड) | डॉ. वेदव्रत आर्य | 30 |
| 16. | कुष्ठ रोगियो के लिए होमियोपैथी चिकित्सा–एक वरदान | डॉ. विद्याकान्त त्रिवेदी | 32 |
| 17. | समाचार प्रवाह | | 34 |


सूचना : छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा का अणुसंकेत
(ई–मेल) **E-mail : chhattisgarhsabha@gmail.com**
(सम्पादक) **E-mail : shastrikv1975@gmail.com**

लेख में प्रकट किए विचारों के लिए सम्पादक उत्तरदायी नहीं है।


सम्पादक प्रकाशक मुद्रक – आचार्य अंशुदेव आर्य द्वारा छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग के वैदिक मुद्रणालय से छपवाकर प्रकाशित किया गया।

# इन्द्र सबसे महान् है

भाष्यकार – स्व. डॉ. रामनाथ वेदालंकार

वेद वेदामृत

**प्राक्तुभ्य इन्द्रः प्र वृधो अहभ्यः, प्रान्तरिक्षात् प्र समुद्रस्य धासेः।**
**प्र वातस्य प्रथसः प्र ज्मो अन्तात्, प्र सिन्धुभ्यो रिरिचे प्र क्षितिभ्यः।।**

ऋग् १०.८६.११

ऋषिः **रेणुः**। देवता **इन्द्रः**। छन्दः **विष्टुप्**।

(**इन्द्रः**) परमैश्वर्यवान् प्रभु (**अक्तुभ्यः**) रात्रियों से (**प्र**) महान् है, (**अहभ्यः**) दिनों से (**प्र वृक्षः**) महान् है, (**अन्तरिक्षात्**) अन्तरिक्ष से (**प्र**) महान् है, (**समुद्रस्य**) समुद्र की (**धासेः**) कुक्षि से (**प्र**) महान् है। (**वातस्य**) वायु के (**प्रथसः**) यश और विस्तार से (**प्र**) महान् है, (**ज्मः**) पृथिवी के (**अन्तात्**) अन्त से (**प्र**) महान् है, (**सिन्धुभ्यः**) नदियों से (**प्र**) महान् है, और (**क्षितिभ्यः**) मनुष्यों से (**प्ररिरिचे**) महान् है।

वेदों में इन्द्र नाम से स्मरण किये गये परमैश्वर्यशाली प्रभु की महिमा महान् है। कृष्णपक्ष और शुक्लपक्ष की काल और चाँदनी रात्रियों को, उनमें प्रतिदिन नवीन–नवीन रूप से उदित होते हुए चन्द्रमा को और आकाश में छिटकी हुई तारकावलि को देखकर कौन मुग्ध नहीं हो जाता ? पर मेरे इन्द्र की महिमा रात्रियों से भी महान् है। रात्रि के पश्चात् प्राची में आकाश की कालिमा को चीरती हुई उषा का और उषा के अनन्तर सूर्य का दर्शन होता है। सूर्य की ज्योति ही दिन का निर्माण करती है। दिन प्राणिमात्र को प्राण प्रदान करता है, कर्मों में व्यापृत करता है, जीवन में सफलताएँ लाता है। पर मेरे इन्द्र की महिमा दिनों से भी महान् है। अन्तरिक्ष की ओर देखो, जहाँ पवन बहता है, बादल बनते हैं, बिजलियाँ चमकती हैं, जो अमृत बरसता है। पर मेरे इन्द्र की महिमा अन्तरिक्ष से भी महान् है। समुद्र की ओर भी दृष्टिपात करो, जो जल का अथाह पारावार है, जो नदियों का आश्रय है, जो पर्जन्य को जल का दान करता है, जिसकी कुक्षि में रत्न भरे पड़े हैं। पर मेरे इन्द्र की महिमा समुद्र से भी महान् है।

वायु के वेग, विस्तार और यश की ओर भी निहारो। वह निरन्तर चलता रहता है, कभी श्रान्त नहीं होता। वह सर्वत्र व्याप्त है, वह प्राण का स्रोत है, वह जीवन का आधार है, वह गन्धवह है, वह यश से यशस्वी है। पर मेरे इन्द्र की महिमा वायु से भी महान् है। पृथिवी की ओर भी नेत्र संचार करो। यह सब प्राणियों की माता है, यह वनस्पतियों की अंकुरण–स्थली है, इसके गर्भ में सोने–चांदी की खानें हैं, इसके अन्दर अमृत के स्रोत हैं, यह अन्नदात्री है। पर मेरे इन्द्र की महिमा पृथिवी से भी महान् है। नदियों की महिमा भी नयनगोचर करो। ये हिममय शिखरों से निकल भूमि पर प्रवाहित होती हैं और धरा को अमृत–तुल्य जल से सींचकर सस्य–श्यामला बनाती हैं। पर इन्द्र की महिमा नदियों से भी महान् है। फिर मनुष्य को देखो, यह कैसा विलक्षण हाड़–मांस का पुतला है, जो सोचता–विचारता है, सकंल्प करता है, निश्चय करता है, ऐसे–ऐसे निर्माण और आविष्कार करता है जिन्हें देख मानव–बुद्धि पर चकित हो जाना पड़ता है। पर इन्द्र की महिमा मानव से भी महान् है। आओ, हम उस इन्द्र के प्रति नतमस्तक हों, और उसकी महिमा के गीत गाएँ।

---

१. अक्तुःरात्रि (निघं १.७)। २.धासि=धारक उदर, कुक्षि। ३.प्रथ प्रख्याने। ४. ज्मा पृथिवी (निघं १.१)। ५. क्षिति मनुष्य (निघं २.३)। ६. प्ररिचिर विरेचने, लिट्।

## सम्पादकीय

# आर्यसमाज स्वर्णिम अतीत, धुंधला वर्तमान

सहृदय पाठकों !

देव दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की और अपने अन्तिम समय में अपने उत्तराधिकारियों से, प्रमुख आर्यों से यही तीन आश्वासन लिये। प्रमुख आर्यो ने, ऋषि के धर्मपुत्रों ने कहा –**''भगवन, वेदोऽस्मि, यज्ञोऽस्मि, लोकोऽस्मि''**। अर्थात् हमने आप से सद्ज्ञान प्राप्त कर लिया है, हमारे अन्दर यज्ञ की भावना कूट–कूट कर भर दी गई है और हम वेद और यज्ञ की साधना के लिये लोक–साधना भी करते हैं। महर्षि सन्तुष्ट हुए और अपने महान् कार्य को सुयोग्य हाथों में सौप कर चल दिये। पं. गुरूदत्त जी विद्यार्थी, धर्मवीर पं. लेखराम, श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी महाराज और प्रातः स्मरणीय महात्मा हंसराम जी सरीखे कतिपय महानुभावों के पवित्र हाथों और बलिष्ठ कन्धों पर यह कार्य आ पड़ा। वेदज्ञान की सुंदर लहरी कलकल कर बहने लगी। आर्य साहित्य का सृजन होने लगा। शास्त्रार्थ द्वारा मिथ्याप्रचार का खण्डन और सत्य–सिद्धांतों का मण्डन होने लगा। बच्चा–बच्चा चलता फिरता प्रचारक बन गया, भ्रम, अज्ञान, मिथ्या विचार सभी मिटने लगे। वेद के प्रकाश के सामने मतमतान्तर के दीपक मंद पड़ने लगे। सद् और असद् में विवेक होने लगा। यज्ञ की भावना की बाढ़ आ गई। वेद–प्रचार के लिए शिक्षा का प्रचार और प्रसार होने लगा। अछूतोद्धार का बीड़ा उठाया गया, अनाथों के पालन–पोषण, अबला और विधवाओं की रक्षा का भार उठाया गया। चारों ओर आर्यसमाज ने एक वृहद यज्ञ रच डाला।

हिन्दूओं की दानप्रणाली को एक नई दिशा मिली। हिन्दू दान में जगत् विख्यात है। पर वह दान था मन्दिरों के लिए, महन्तों के लिए। यह दान अनाचार और अज्ञान को बढ़ावा देने वाला सिद्ध हुआ। आर्यसमाज ने इस दान को नया मोड़ दिया इससे अब यज्ञ रचाये जाने लगे और वेद–प्रचार, शिक्षा प्रसार और समाज सुधार के पुनीत कार्य सम्पन्न होने लगे। ज्ञान और कर्म का सुंदर समन्वय होने लगा। **'तेन त्यक्तेन भुंजीथाः'** की भावना जन–जन के मन में भरी जाने लगी आर्यसमाज के

जीवन का यह सुनहरा काल था। इस काल में साध्य तो था वेद और साधन थे, यज्ञ एवं लोक। ऐसा मालूम होने लगा कि इस देश में न कोई अछूत रहेगा, न अनाथ, न कोई विधवा होगी और न अशिक्षित नारी। ऊंच–नीच का भेदभाव मिट कर रहेगा, हिन्दू जाति के दुःख कट जायेंगे और चारों ओर सुख ही सुख उपजेगा। वेद का नाद देश की पुनीत सीमा को तो गूंजायमान करेगा ही, विदेश में भी वैदिक धर्म का प्रसार होगा। तब किसी उर्दू कवि ने कहा था–

**वैदिक धर्म फैलेगा बहती आबशारों में, चमन के महकते फूलों में, दिलकश बहारों में।**
**चमकते चांद सूरज में, सैयारों में, सितारों में, मैदानों में, आबों में, मनोहर कोहसारों में।।**

आज भी वह युग याद आता है तो झूम उठते हैं आर्यसमाज, आनन्दविभोर हो उठता है यह माना वह हमारा स्वर्णयुग था। युग बदला। समय ने पलटा खाया। 'वेदोऽस्मि' का सुन्दर पाठ भूलने लगा। वेद की भावना लुप्त होने लगी। प्रत्येक आर्य केवल सन्ध्या, हवन कर लेने में ही अपने कर्त्तव्य की 'इतिश्री' समझने लगा। वेद की प्रमुखता गौणता में बदलने लगी। यह प्रमुख स्थान प्राप्त कर गया और साथ ही लोक भी उभर कर सामने आने लगा। यज्ञ की भावना ने जोर पकड़ा, लोक ने सहारा दिया और जगह–जगह पर डी.ए.वी. संस्थाएँ खुलने लगीं। लड़कों के स्कूल, लड़कियों की पाठशालाएँ, लड़के–लड़कियों के लिए कॉलेज, ज्ञान व विज्ञान की शिक्षा के केन्द्र, दस्तकारी और शिल्पकला के केन्द्र, आयुर्वेद और ब्रह्मविद्या के संस्थान स्थापित हो गये। अनेक गुरूकुल खुले कि प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को पुनर्जीवन प्राप्त हो। अनाथालय खुले कि मातृ भूमि के लाल अपनी ही मातृभूमि के सुदृढ़ अंग बन पायें। विधवा आश्रम बनाये गये, नारी–निकेतन और सेवा–सदन खड़े किये गये कि स्त्री–जाति की मान–मर्यादा बनी रहे। ओह ! यज्ञ की सुंदर भावना के ये प्रज्वलन्त उदाहरण आज भी अपना शीश ऊंचा किये विश्वभर को सेवा, परोपकार और धन के सदुपयोग का पाठ पढ़ा रहे हैं। तप और त्याग, स्वाभिमान और स्वावलम्बन के बल पर यज्ञ का प्रसार होने लगा। यह युग यज्ञ का युग था। स्वर्ण युग तो न था, पर गौरवमय अवश्य था परन्तु यह स्थिति भी अधिक काल तक न रही।

समय ने करवट बदली। आंख खुली तो चारों ओर सर्वत्र **'लोकोऽस्मि'** का ही साम्राज्य दृष्टिगोचर हुआ। आज यह स्थिति है कि आर्यसमाज में न तो वेद की प्रमुखता है और न ही यज्ञ की भावना है। चारों ओर **'मैं और मेरा'** गूँज रहा है। लोकैषणा ने दबोच लिया है। धन की लोलुपता और अर्थ की भावना ने आ घेरा है। आज प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि रात को सोये हजारों में और प्रातः उठे तो लाखों में खेलता हो। लखपति सोये और उठे तो करोड़पति हो। 'लोकोऽस्मि' का दौर चल रहा है। वेद और यज्ञ का विचार तक नहीं रहा। आज वेद आँखों से दूर है। वेद–प्रचार तो दूर रहा, वेद पर हो रहे प्रहार को रोकने की भी किसी को चिन्ता नहीं। वेद सब सत्य विद्याओं और जो पदार्थ सत्य विद्या से जाने जाते हैं, का मूल है। वेद का पढ़ना–पढ़ाना और सुनना–सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। आये दिन वेद में गोमांस खाने का प्रतिपादन करने वाले अविवेकियों का प्रतिवाद करने का साहस किसी से नहीं रहा। मानों वैदिक सिद्धांत द्रोपदी का गुहार सुनकर कोई भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य जड़ निष्क्रिय तेजहीन हो गये हों। हा! दुर्दिन। गोदूध को मांसहार बताने वाली श्रीमती मेनका गांधी मानो सारमेयी बुद्धि रखती है।

वेद प्रचार और ज्ञान प्रसार की भावना, लुप्त, समाप्त, भूले–बिसरे युग की बात बनकर रह गई है। कहीं–कहीं किसी आर्य के मन से हूक उठती, तड़प पैदा होती है, पर वह भी इस लोक–प्रधान युग में विवश होकर बैठ जाता है। यदि वेद आज आँखों से दूर है तो यज्ञ भी दिल से दूर है। हमें तो 'मैं और मेरे' से गर्ज है, मैं जीता हूं तो सभी सलामत है। मेरे पास धन है, बैंक बैलेंस है, कोठी है, मोटर है, तो सारा जहान मौज में है। सर्वत्र स्वार्थ का ही साम्राज्य है। सौ हाथ से कमा, हजार हाथ से बांट की भावना जाती रही। **'मा गृधः कस्य स्विद्धनम्'** का

उपदेश कानों में गूंज पैदा नहीं करता। इस उपदेश को आज कोई नहीं सुनता। यदि इस कान से सुनता है तो दूसरे से निकाल देता है और कहता है कि इसीलिए तो प्रभु ने दो कान दिये हैं। जब अवस्था हो, तो अकाल में भूख से मरते हुओं को कौन तिजोरी खोल दे ? और, कौन जमींदार अन्दर ढेर किये हुए अनाज के भण्डार को लुटा दे ? यज्ञ की भावना ही नहीं रही, तो तड़प किस के मन में उठे? देश के कोने–कोने में ईसाई–पादरी विदेश से आये असीम धन की सहायता से निर्धन, अनपढ़, हिन्दुओं को धोखेधड़ी से धन के लालच से, धर्म से पतित कर रहे हैं और देश के धनी, कारखानेदार, जमींदार सभी अपने में मस्त हैं। देश के हाल सुधारने की सुध किसको है ? आर्यसमाजी भी अब वे नहीं रहे। ये भी धन के उपासक बन बैठे हैं। वे, जो इन आर्यों के धर्म–प्रेम से, जाति सेवा से, परोपकार की भावना से परिचित हैं, मुंह में उंगली लिये इनकी ओर निहार रहे हैं, मानों कह रहे हों–

**सो गये आज जमाने को जगाने वाले, दम रोके हुए बैठे हैं, तूफान उठाने वाले।**
**लक्ष्य को अपने वे स्वयं भूल गये, सभी संसार को सन्मार्ग दिखाने वाले।**
**हा ! देव दयानन्द के भक्त कहलाने वालों, मुंह को जरा गिरेबान में अपने डालो।**

परन्तु प्रश्न यह है कि आर्यसमाज को यह दुर्दिन कैसे नसीब हुआ ? पिता ने पुत्र से कहना छोड़ दिया है, उसके मन पर यह अंकित करना भूल गया है कि पुत्र **'त्वं वेदोऽसि, यज्ञोऽसि, लोकोऽसि'**। तुम्हें वेद का ज्ञान प्राप्त करना है, यज्ञ की भावना से ओत–प्रोत होना है, और यज्ञ की पूर्ति के लिए लोक–साधना करनी है। उसका परिणाम यह है जो हम देख रहे हैं। पश्चिम की चकाचौंध ने हमारी आंखों को चुंधिया दिया है। आज पिता धन कमाने में लगा हुआ है और पुत्र धन बढ़ाने में पिता का हाथ बंटा रहा है। बाप डाल–डाल है, तो पुत्र पात–पात। पिता को कारखाने में पहुंचने में कुछ देर है तो पुत्र पहले काम पर जा धमकता है। धर्म की चिन्ता करे तो कौन? राष्ट्र के संकट मिटाने की सोचें तो कौन ? वेद की रक्षा की चिन्ता और यज्ञ करने की कामना किसे है ? आर्यसमाज के सत्संग में आने के लिए समय कहां से निकाले ? यहां तो मरने की फुर्सत नहीं, इतना काम बढ़ गया है।

राष्ट्र के सामने गंभीर समस्याएँ हैं, पर विचार विमर्श करना है, सभा में कौन जाये ? समय नहीं है। उतनी देर में तो सैकड़ों का, हजारों का लेन–देन हो जाता है और पचास प्रतिशत से दो सौ प्रतिशत तक का लाभ हो जाता है। हर घड़ी वारे न्यारे होते रहे हैं। यज्ञ कौन रचाये ? जब ज्ञान ही नहीं, तो कर्म कैसे हो ? यज्ञ में आस्था ही किसको है। सबसे बड़ा यज्ञ तो अपने पेट की पूजा है और फिर पेट भी वह जो भरने में नहीं आता। पिता और पुत्र दोनों लोकैषणा की दौड़ में है। पुत्र जवान है, इस लिए बाप से आगे निकल गया और बाप कभी–कभी रूक कर सोचता है कि क्या जिस मार्ग पर पुत्र सरपट दौड़ रहा है, वह कल्याण का मार्ग है ? क्या इससे पुत्र का भला होगा ? इसमें समाज का कल्याण है ?क्या राष्ट्र का कुछ बन सकेगा ? पुराना आर्यसमाजी है न , कभी 'कमजोरी' का क्षण आ ही जाता है। परन्तु शीघ्र ही सिर झटक कर इस विचार को दूर भगा देता है और चिल्ला कर बेटे से कहता है–'शाबाश, बढ़े चलों और हम भी बड़े भी कभी–कभी सत्संग के बाद परस्पर चिन्तित हो, पूछते हैं कि आर्यसमाज का क्या बनेगा ? नवयुवक इस ओर नहीं आते, इस कार्यभार को कौन उठायेगा ? उत्तर हम सब जानते हैं परन्तु मुख पर नहीं लाते। अपनी सन्तान को हम आर्यसमाजियों ने स्वयं आर्यसमाज के समीप फटकने नहीं दिया। न मैं स्वयं कह सकता हूं **'वेदोऽस्मि, यज्ञोऽस्मि, लोकोऽस्मि'** और न अपनी सन्तान को इन तीनों के महत्व से परिचित होने दिया है। जन्म से मैंने उसके कान में फूंका है–हे पुत्र, **'त्वं लोकोऽसि'**।

इस युग में मैं और मेरा ही सब कुछ है। तू और तेरा दुनियां भूल चुकी है। लोगों को भला कैसे याद आये और आर्यसमाज की बिगड़ी को कौन बनाये और महर्षि दयानन्द के छोड़े हुए कार्य को पूरा कौन करे ? पं. लेखराम आर्य सा बलिदानी कौन हो ? स्वामी श्रद्धानन्द सा स्वाभिमानी कौन हो ? आइये ! आर्यसमाज स्थापना दिवस एवं नवसम्वत्सर आरम्भ के अवसर पर आत्म चिन्तन करें।

**- आचार्य कर्मवीर**

# वैचारिक राज्य व शासन की उन्नति का मार्ग : वेदज्ञान

डॉ. बिजेन्द्रपाल सिंह

प्राचीन काल में राजा व प्रजा का धर्म वेदानुसार था जिसका राजा व प्रजा मिलकर तीन प्रकार की सभा प्रथम राजार्य सभा दूसरी विद्यार्य सभा तीसरी आर्यधर्म सभा होती थी। आर्य राज सभा के राज्य प्रबन्ध सम्बन्धी समस्त कार्य होते थे, दूसरी आर्य विद्या सभा जिसमें सब विद्या व शिक्षा का प्रचार संबंधी कार्य होता था, तीसरी आर्य धर्म सभा जिसमें धर्म का प्रचार अर्थात् धर्म संबंधी कार्य होते थे और अधर्म न हो ऐसी व्यवस्था थी आज भी तीन सभा है परन्तु वहां वेद ज्ञान व आचरण का समावेश नहीं है। कार्यपालिका, विधायिका व न्यायपालिका देश की स्वतंत्रता के पश्चात् संविधान बना तब उसमें वैदिक ज्ञान का अभाव रहा जबकि वेद में तीन सभाओं की जो व्यवस्था है वहां राजा, प्रजा, राजपुरूष, सेनापति, सेना गुप्तचर, विद्यार्थी अध्यापक आदि सभई के जो गुण कर्त्तव्य आदि की जो शिक्षा व ज्ञान है वह वैसा अन्यत्र विश्व में कहीं नहीं है। आज के संदर्भ में तीनों सभाओं को वेद ज्ञान से युक्त करना श्रेष्ठ होगा क्योंकि वेदादि शास्त्रों में राजा प्रजा धर्म पर विशद ज्ञान दिया है।

महाराजा मनु व महात्मा विदुर की नीति संबंधी ज्ञान की अविरल धारा से यह देश चक्रवर्ती शासकों को स्रोत रहा। चाणक्य जैसे कुशल नीतिज्ञ ने तीन चक्रवर्ती सम्राटों का निर्माण किया था। श्रीकृष्ण की नीति महाभारत युद्ध में अद्वितीय रही थी। कुशल नीतिज्ञ व वेदज्ञानी राजाओं अश्वयति एवं भर्त्तहरि आदि के शासन में प्रजा अत्यन्त सुखी होती थी यह तभी सम्भव था जब यह सब वेद के अनुसार राजा प्रजा का धर्म निभाते थे। वेद में ही ऐसे ज्ञान का भण्डार है यदि एक मंत्र भी देख लें तो जैसी आज की स्थिति दुःखद बन चुकी है उसमें अवश्य सुधार हो जायेगा। आज राज्य व्यवस्था सुचारू रूपसे चलानी है तो वेदाचरण करने वालों को ही तीनों सभाओं में लाना होगा। एक मंत्र ही देखें मंत्र तो वेद में ज्ञान देने वाले ज्ञान का प्रकाश होता है–मानव व समाज के लिए मंत्र हमें शिक्षा देते हैं। यही ईश्वरीय ज्ञान है प्रत्येक मंत्र जीवन में उपयोगी है–

**यत्र ब्रह्मं च क्षत्रं च सम्यंचौ चरतः सह।**
**तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेशं यत्र देवाः सहाग्निना।**

य. अ. 20/मं. 25

जिस देश में उत्तम विद्वान् ब्राह्मण विद्या सभा और राज सभा विद्वान शूरवीर क्षत्रिय लोग, ये सब मिलकर राजकर्मों को सिद्ध करते हैं। वही देश धर्म और शुभ क्रियाओं से संयुक्त हो के सुख को प्राप्त होता है। जिस देश में परमेश्वर की आज्ञापालन और अग्निहोत्रादि सत्क्रियाओं में वर्तमान विद्वान् होते हैं वही देश सब उपद्रवों से रहित होके अखण्ड राज्य को नित्य भोगता है।

विद्या सभा, धर्म सभा व राज सभा इनके सभासद धार्मिक व विद्वान् हों उनके गुण कर्म स्वभाव सबसे उत्तम है। सभी उत्तम नियों का पालन करते हुए सब सबके हितकर कार्यों के लिये एक दूसरे से विचार विमर्श किया करें तथा सर्वहितकारी कार्यों के लिए परतंत्र हों तथा निज कार्यों के लिये स्वतंत्र रहें तभी प्रजा व राज्य सुखी रह सकते हैं।

अपना पुराना इतिहास उठाकर देखें उत्तम ज्ञान विद्वान् ब्राह्मण राजा के सम्मुख उन्हें सत्यसे अवगत कराते थे। राजा यदि वेद विरूद्ध नियमों का आचरण करते थे तो उसके लिए अमात्य अथवा मंत्री उस राजा को कठोर वचन कहते थे और

कहने में भय नहीं मानते थे। मगध के शासक चन्द्र मौर्य कें मंत्री जो गुरू भी थे राजनियमों का कठोरत से पालन कराते थे ऐसे ही हस्तिनापुर में पांडवों कौरवों के शासन में धृतराष्ट्र के यहां विदूर और महान विद्वान् श्रीकृष्ण जैसे वेद के पंडित थे।

ब्राम्हण का गुण है जितेन्द्रिय होना, ब्रह्मचर्य का पालन करना अपनी इन्द्रियों को अन्याय से दूर रखना न्याय का आचरण करना कराना धर्म मार्ग चलाना। वेदादि सत्य शास्त्रों का अध्ययन करना व अन्य को पढ़ाना दान देना यह जो कार्य है वह ब्राह्मण के हैं। महाराज मनु ने ब्राह्मण के यह गुण धर्म बताये हैं। ऐसे विद्वान व्यक्ति शासन में हो तो वह राज्य सुखी होता है। यह ब्राह्मण शब्द जन्मना जाति से नहीं अपितु गुण कर्म स्वभाव पर आधारित से हैं। राज्य में ऐसे ही विद्वान् अधिकारी हों ऐसे ही सभा के सदस्य हों ऐसे विद्वान् मंत्री होने चाहिये। आज क्योंकि प्रजा तंत्र है ऐसे में प्रत्येक मंत्री वेद का विद्वान् हो प्रत्येक सांसद वेद का आचरण करने वाला हो, अधिकारी सत्य पर दृढ़ता से चलने वाले हों यदि ऐसा होगा तो प्रजा भी उन प्रतिनिधियों के रास्ते पर ही चलेगी और राज्य में सुख की वर्षा होगी।

आज देखन में यह आ रहा है कि राज्यों में एक वर्ष में पांच हजार से अधिक बलात्कार और इतनी ही हत्यायें तथा लगभग इतने ही अपहरण व लूटपाट की घटनायें हो रही है। उ.प्र.बिहार दिल्ली इनमें घटनाओं दुर्घटनाओं का प्रतिशत सर्वाधिक है। इसका कारण ही यहां अराजकता, अधर्माचरण है, सद्चरित्रता की कमी है। जहां अशिक्षित दुराचारी व अनाचारियों की संख्या सत्ता, समाज में अधिक होगी वहां प्रजा पर अन्याय तो होगा ही, चुनावों में वोट लेने घर–घर जाते हैं। पांच वर्ष तक जनता कितना भी सिर पिट ले नेताओं का उनके कर्त्तव्य की याद नहीं आती। जनता भय अन्याय व आतंक के साये में सुबकती रहती है। ऐसे ही तो राज्य दुखी रहा करते हैं। जनता दुखी रहती है।

अन्यायी दुष्टाचारी लोग जनता को जीने नहीं देते भ्रष्टाचारियों को ही श्रेय दिया करते हैं। यहां इसीलिए कहा है ब्रह्मं च अर्थात् वेद विद्या व सत्य विद्याओं के ज्ञाता विद्वान् ब्राह्मण होने चाहिये जिनकी वाणी व मन एक से सत्याचरण वाले ही हों, जब तक वेद ज्ञान का प्रकाश रहा और सत्याचरण रहा तब तक राज्य व समाज (राजा प्रजा मंत्री) सब ठीक प्रकार चले परन्तु धीरे–धीरे जब वेद विद्या का लोप हुआ राजा मंत्री आदि प्रमादी आलसी लोभी अपस्वार्थी हो गये। अब अमात्य मंत्र अज्ञानतावश राजा व प्रजा को भ्रमित करने लगे अपने निज स्वार्थ से संबंधित जो लाभकारी था उनसे वेद का नाम लेकर कि ऐसा वेद में लिखा है मनवाने लगे क्योंकि राजा सैनिक आदि तो वेद पहले ही नहीं थे इसलिए राजा प्रजा अमात्य आदि सब अज्ञानी हो गये राज्य व्यवस्था चौपट हो गयी। अन्धेर नगरी चौपट राजा जैसा सर्वत्र हो गया। आपस में फूट हो गयी जहां परस्पर राजाओं में भ्रात्रवत प्रेम था शत्रुता में परिवर्तित हो गया।

यदि मंत्री अज्ञानी लोभी स्वार्थी हो गये और क्षत्रिय भी ऐसे ही रहे यदि क्षत्रिय वेद पढ़ते तो अमात्य अथवा मंत्रियों की अज्ञानता की बातें नहीं मानते न उनका आचरण ही करते न राज्य नष्ट भ्रष्ट होते। इसीलिए प्रकाश किया है ब्रहां च क्षत्रं च, अर्थात् क्षत्रिय भई वेद पढ़ें, क्षत्रियों का कर्त्तव्य है कि न्याय से प्रजा की रक्षा करना और श्रेष्ठजनों का सम्मान करें ऐसा नहीं कि दुष्टों के साथ सद्व्यवहार करें और श्रेष्ठों से बात ही न करें। श्रेष्ठों का विशेष सम्मान करना चाहिये चारों और विद्या बढ़ें कहीं कोई बालक बालिका या व्यक्ति विद्या से दूर न रहें। अज्ञानता रूपी अंधकार न रहे। धर्म का प्रचार हो सभी अपने कर्त्तव्य कर्मों का सत्यतः पालन करें धन वहीं देना जहां उसकी आवश्यकता हो सभी अग्निहोत्र करें वेदादि शास्त्रों को पढ़ें व पढ़ावें, यह क्षत्रियों को करना, कराना चाहिए। ऐसा नियम बनावें कि सभी इनका पालन करें इसी प्रकार वैश्य अपना कार्य पशुपालन कृषि आदि सत्य रूप से करें जिससे प्रजा को अन्नादि

समुचित रूप से मिलता रहे। शूद्र सेवा कार्यों में दक्ष हों, मन में पक्षपात ईर्ष्या, अभिमान न हो कर सब प्रकार से सेवा कार्य करते रहें।

ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य व शूद्र सभी अपने अपने कर्त्तव्यों का निष्ठा से पालन करें पक्षपात न करें परस्पर सहयोग करें आपसी सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। बिना सहयोग के कोई कार्य सुचारू रूप से नहीं हो सकता। ब्राह्मण विद्या का दान देवें क्षत्रियादि व प्रजा भी विद्यावान् हों। क्षत्रिय प्रजा की रक्षा करने में तत्पर रहें कहीं अधर्म न हो दुश्चरित्रता न हो, अनाचार न हो, समाज की गतिविधियों पर पूर्ण नियन्त्रण रखें। वैश्य जन कृषि पशुपालन को भलीप्रकार से करें पशुओं की सेवा यथायोग्य करें व पशुओं से लाभ लेवें। आज छोटे विद्यालय से लेकर विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर जो शिक्षक वर्ग हैं ब्राह्मण वर्ग समान ही हैं। उनमें गुरूकुल व आश्रम तो उचित है परन्तु अन्यत्र वेदज्ञान का अभाव है। उसमें भी यदि शिक्षक दुराचारी, मद्यापानी, दुर्व्यसनी हो तो वह समाज को योग्य सद्चरित्र विद्यार्थी तो नहीं दे सकता।

भारत में आज वह प्राचीन गौरव नहीं एक समय था जब राजा प्रजा का पूरा ध्यान रखता था। प्रजा दुखी न थी और कोई कष्ट न था। यदि कोई दुखादि होता था तो राजा या राज कर्मचारी स्वयं प्रजाजनों के पास जाकर समस्या का निराकरण करते थे। कोई भूखा न सोता था, उस राज्य में राजा मंत्री सैनिक व कर्मचारी सभी वेद विद्या के जानने वाले तथा आचरण करने वाले होते थे। ऐसा कोई न होता था जो अग्निहोत्र न करता हो। परस्पर आपसी सहयोग से राज्य व प्रजा के कार्यों को भली प्रकार से अपना धर्म मान कर किया करते थे।

जब आपस में परस्पर सहयोग होता था तभी राज्य के कार्य सम्यक् रूप से चलते थे। परस्पर सहयोग न रहने से ही राज्य व्यवस्था विक्रत हो गयी। छोटे–छोटे राज्य बने चक्रवर्ती राज्य न रहे। आपस में द्वेष बढ़ गया, अन्धविश्वास बढ़ गये क्योंकि शिक्षा व्यवस्था भी चौपट हो गयी।

आज वह स्थिति विभिन्न राजनीतिक दलों की है जहां अपने स्वार्थ को ही महत्व दिया जाता है। चुनाव से पूर्व वाक् युद्ध जैसी स्थिति होती है। जो नहीं बोलना चाहिये वह बोला जाता है। राष्ट्र के सम्मान तक को ताक् पर रख दिया जाता है। राष्ट्र की रक्षा से संबंधित इतिहास व स्मारक से संबंधित गाय की रक्षा जैसी बातों को साम्प्रदायिक बता दिया जाता है। ऐसे में कैसे राष्ट्र की रक्षा हो सकेगी।

*पताःचन्द्रलोक कालोनी, खुर्जा – 203131*

# हास्यम्

एक आदमी अपनी पत्नी और सोलह बच्चों के साथ घर से बाहर निकला अगले चौराहे पर ही खड़े ऐ सिपाही उसे पकड़ लिया, उस आदमी ने अपने पकड़े जाने का कारण पूछा तो सिपाही ने कहा, तुम ने कुछ न कुछ बुरा काम तो किया ही होगा, तभी तो यह भीड़ तुम्हारे पीछे चली आ रही है।

०

''डॉक्टर साहब मैं आपका बहुत धन्यवाद करता हूँ, आपके इलाज से मेरा बहुत लाभ हुआ है।''

''लेकिन मैं ने तो तुम्हारा इलाज नहीं किया, मैंने आज तुम्हें पहली बार देखा है।''

''हाँ, लेकिन आप मेरे चाचा का इलाज कर रहे थे, अब मैं उनकी जायदाद का मालिक बन गया हूँ।''

००

अजनबी के चेहरे पर कृतज्ञता के भाव थे, वह एक आदमी के घर में जा कर बोला, ''आप ने दस साल हुए तब मुझे दस रूपये देकर मेरी सहायता की थी। अब तक मैं उसे भूला नहीं हूँ।''

''अच्छा! मैं तो भूल ही गया था। तो आप मुझे वह रूपये वापस करने आए हैं ?''

''नहीं मैं इस शहर से गुजर रहा था। मैंने सोचा आप से दस रूपये और लेता चलूँ।''

०००

मन्तव्य

# ऋषि दयानन्द क्या चाहते थे

मनमोहन कुमार आर्य

ऋषि दयानन्द महाभारत के बाद विगत लगभग पांच हजार वर्षों में वेदों के मंत्रों के सत्य अर्थों को जानने वाले व उनके आर्ष व्याकरणानुसार सत्य, यथार्थ तथा व्यावहारिक अर्थ करने वाले ऋषि हुए हैं। महाभारत के बाद ऐसा कोई विद्वान नहीं हुआ है जिसने वेदों के सत्य, यथार्थ तथा महर्षि यास्क के निरूक्त ग्रन्थ के अनुरूप व्यवहारिक, उपयोगी, कल्याणकारी एवं ज्ञान विज्ञान के अनुरूप अर्थ किये हों। वेदों का यथार्थ ज्ञान हो जाने पर मनुष्य ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति के सत्य रहस्यों व ज्ञान–विज्ञान से परिचित हो जाता है। ऋषि दयानन्द से पूर्व उन जैसा वेदों का विद्वान व प्रचारक न होने के कारण विगत पांच हजार वर्षों से मनुष्य ईश्वर व जीवात्मा के सत्य स्वरूप के विषय में शंकित व भ्रमित था। इस बीच बड़ी संख्या में मत–मतान्तर उत्पन्न हुए परन्तु वह वेद, दर्शन व उपनिषदों के होते हुए भी ईश्वर के सत्यस्वरूप को लेकर भ्रमित रहे। सभी मतों के आचार्यों में विवेक का अभाव प्रतीत होता है अन्यथा वह जड़ पूजा, मिथ्या पूजा व मूर्तिपूजा का विरोध व खण्डन अवश्य करते और जनसामान्य को बताते कि ईश्वर सच्चिदानन्द एवं निराकार आदि गुणों वाला है और उसकी प्राप्ति वा साक्षात्कार उस सर्वव्यापक एवं सर्वान्तर्यामी सत्ता की उपासना व ध्यान करने सहित स्तुति, प्रार्थना व उपासना के माध्यम से ही की जा सकती है।

महर्षि दयानन्द क्या चाहते थे इसके उत्तर में यह कह सकते हैं कि वह संसार को ईश्वर, जीवात्मा तथा प्रकृति का सत्यस्वरूप बताना चाहते थे जो सृष्टि के आरम्भ में सर्वव्यापक ईश्वर ने अपने ज्ञान वेदों के द्वारा अमैथुनी सृष्टि में उत्पन्न चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा को दिया था। ऋषि दयानन्द ने ईश्वर व जीवात्मा विषयक वेदों के समस्त ज्ञान को अपने प्रयत्नों से प्राप्त किया था और इतिहास में पहली बार इसे सरल लोकभाषा हिन्दी सहित संस्कृत में देश–देशान्तर में पहुंचाया। ईश्वरीय ज्ञान ''**वेद**'' सब सत्य विद्याओं का ग्रन्थ है। इस कारण वह इसे सभी देशवासियों सहित विश्व के लोगों तक पहुंचाना चाहते थे जिससे वह वेदों का आचरण कर मनुष्य जीवन के पुरुषार्थ एवं उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त हो सकें। वह इस कार्य में आंशिक रूप से सफल भी हुए। आज इसका प्रभाव समस्त विश्व पर देखा जा सकता है। इसी कार्य के लिये ऋषि दयानन्द ने आर्यसमाज की स्थापना की थी। इस कार्य को सम्पादित करने के लिये उन्होंने अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया जिनमें ऋग्वेद (आंशिक) तथा यजुर्वेद के संस्कृत व हिन्दी भाष्य सहित सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादि–भाष्यभूमिका, संस्कारविधि, पंचमहायज्ञविधि, आर्या–भिविनय, व्यवहारभानु, गोकरूणानिधि आदि ग्रन्थ हैं। देश व विश्व के लोग ईश्वर व आत्मा के सत्यस्वरूप तथा गुण–कर्म–स्वभाव को जानें और सही विधि से ईश्वरोपासना करें, इसके लिये उन्होंने पंचमहायज्ञ विधि लिखी जिसमें उन्होंने प्रातः व सायं ध्यान विधि से ईश्वर की उपासना की विधि ''संन्ध्या का अध्ययन करने से होता है। अतीत में अनेक पौराणिक विद्वानों ने भी अपनी संन्ध्या व उपासना पद्धतियों को छोड़कर ऋषि दयानन्द लिखित संन्ध्या पद्धति की शरण ली है। पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी ने अपनी आत्माकथा में इसका उल्लेख करते हुए बताया है कि काशी में जिस उच्च कोटि के विद्वान पं. देवनारायण तिवारी जी से

पढ़ते थे उन्होंने यह जाने बिना की पुस्तक किसकी लिखी हुई है, इसे सर्वोत्तम जानकर इसी विधि से उपासना करना आरम्भ कर दिया था। बाद में जब उन्हें यह पता चला कि वह संन्ध्या की पुस्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने लिखी है तो उन्हें ऋषि दयानन्द की विद्वता को जानकर सुखद आश्चर्य हुआ था। महर्षि दयानन्द ने 10 अप्रैल, सन् 1875 को मुम्बई नगरी में आर्यसमाज की स्थापना की थी। इसके बाद लाहौर में आर्यसमाज के 10 नियम बनाये गये जिनमें से आठवां नियम है, **अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिये।** हम इससे पूर्व किसी संस्था व देश के संविधान में इस नियम का विधान नहीं पाते। यह नियम ऐसा नियम है कि जो समाज व देश इस नियम को अपना ले, वह ज्ञान व विज्ञान में शिखर स्थान प्राप्त कर सकता है। आश्चर्य है कि हमारे देश में इसे अब तक लागू नहीं किया जा सका।

ऋषि दयानन्द अपने ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में देश के सभी बालक व बालिकाओं के लिये वेदानुमोदित शास्त्रीय व ज्ञान–विज्ञान की शिक्षा का विधान करते हैं। वह लिखते हैं कि शिक्षा व विद्या देश के सभी बालक व बालिकाओं का निःशुल्क व समान रूप से मिलनी चाहिये। वैदिक शिक्षा में बच्चों को गुरूकुल में रहकर शिक्षा प्राप्त करनी होती है। राजा हो या रंक, सबको शिक्षा का अधिकार है, इसका विधान ऋषि दयानन्द ने किया है। उन्होंने यह भी लिखा है कि किसी भी विद्यार्थी के साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं होना चाहिए। सबको समान रूप से वस्त्र, भोजन एवं अन्य सभी सुविधायें मिलनी चाहियें। यह भी कहा है कि शिक्षा सभी बालक व बालिकाओं के लिये अनिवार्य होनी चाहिये। जो माता–पिता अपने बच्चों को गुरूकुल पाठशाला व विद्यालयों में न भेंजे, वह दण्डनीय होने चाहिये।

मनुष्य जब ईश्वर व जीवात्मा के विषय को याथार्थ रूप में जान लेता है तब वह सभी प्रकार के अज्ञान व अन्धविश्वासों सहित मिथ्या परम्पराओं से भी परिचित होकर सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करता है। जन्मना जातिवाद पर भी ऋषि दयानन्द न प्रहार किया है। जन्मना जाति व्यवस्था को ऋषि दयानन्द ने मरण व्यवस्था की संज्ञा व उपमा दी थी। वह इस व्यवस्था से दुःखी थे। उन्होंने वेदों के ज्ञान व अपने विवेक से युवक व युवती के विवाह का विधान कर उनके गुण, कर्म व स्वभाव की समानता व अनुकूलता पर बल दिया है। वह बेमेल विवाह व बाल विधवाओं व विधुरों का विरोध नहीं किया। यद्यपि व सभी प्रकार के पुनर्विवाहों को उचित नहीं मानते थे परन्तु आर्यसमाज इसे आपदधर्म के रूप में स्वीकार करता है। वेद में भी विधवा स्त्री के पुनर्विवाह का विधान है। सभी सामाजिक परम्पराओं पर महर्षि दयानन्द की विचारधारा प्रकाश डालती है।

ऋषि दयानन्द देश में स्वराज्य देखना चाहते थे। इस विषय में उन्होंने सत्यार्थप्रकाश में स्वदेशीय राज्य को सर्वोपरि उत्तम बताया है और कहा है कि मत–मतान्तर के आग्रह रहित, अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर पिता माता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य पूर्ण सुखदायक नहीं हो सकता। उनके इन विचारों के परिणामस्वरूप कालान्तर में देश में आजादी के लिये गरम व नरम विचारधारायें सामने आयीं। देश की आजादी के आन्दोलन में सबसे अधिक योगदान भी आर्यसमाज ने ही किया। आर्यसमाज ने देश की आर्य हिन्दू जाति को धर्मान्तिरण से बचाया।

आर्यसमाज की वैदिक विचारधारा का प्रचार होने से सभी मत–मतान्तरों के विज्ञ व विवेकशील लोगों ने इसे विद्यमान अन्य मतों की विचारधारा से उत्तम जानकर कुछ ने इसे अपनाया भी। इसका परिणाम यह हुआ कि विश्व इतिहास में पहली बार वैदिक सनातन धर्म से इतर मतों के विज्ञजनों ने वैदिक विचारधारा वा वैदिक धर्म को स्वीकार किया और ऋषि के अनुयायियों वा आर्य समाज ने उन्हें अपने धर्म में सम्मिलित किया। आज भी ऐसी घटनायें होती रहती हैं। ऋषि दयानन्द की विचारधारा मांसाहार की विरोधी एवं शुद्ध अन्न व भोजन का सेवन करने की पोषक है। मनुष्य का भोजन अन्न, शाक–सब्जी, फल एवं दुग्ध आदि ही हैं। इनके सेवन से मनुष्य निरोग रहते हुए लम्बी आयु को प्राप्त करता है। मांसाहार अनेक रोगों को आमन्त्रण देता है। मांसाहार ईश्वर

प्राप्ति में बाधक है और मांसाहार हिंसायुक्त कर्म व अभक्ष्य होने सहित वेदों में इसकी आज्ञा न होने के कारण जन्म जन्मान्तर में इसका परिणाम दुःख पाना होता है। आर्यसमाज ने वायु–वृष्टि जल के शोधक व आरोग्यकारक अग्निहोत्र यज्ञ का भी प्रचार किया जिससे असंख्य प्राणियों को सुख लाभ होने से पुण्यार्जन होता है और हमारा यह जन्म व परजन्म सुख व कल्याण से पूरित होता है।

महर्षि दयानन्द का मुख्य उद्देश्य संसार से अविद्या का नाश तथा विद्या की वृद्धि करने सहित विद्या के ग्रन्थ वेदों सहित ज्ञान व विज्ञान को प्रतिष्ठित व प्रचारित करना था। वेद की किसी भी मान्यता का ज्ञान व विज्ञान से विरोध नहीं है। वस्तु स्थिति यह है कि वेदों की सभी मान्यतायें ज्ञान–विज्ञान की पोषक है। ऋषि दयानन्द की दृष्टि में वेद और वेदानुकूल मान्यतायें सत्याचरण का पर्याय हैं और यही वास्तविक विश्व के मनुष्यों का धर्म हैं। सभी को ईश्वर प्रदत्त मानवमात्र व प्राणीमात्र के हितकारी वेदमत का ही अनुसरण करना चाहिये। यही ऋषि दयानन्द को अभीष्ट था। इसी से विश्व में सुख व शांति का वातावरण बनाने में सहायता मिल सकती है।

**पता : 196 चुक्खूवाल–2, देहरादून 248001**

## बस हो गया धर्म

तुम पूजा क्यों करने लग जाते हो,
माला ताबीज लटकाकर घूमने लगते हो
दीया अगरबत्ती, लोभान, मोमबत्ती
जलाकर बैठ क्यों जाते हो
अवतार इसलिए लिया था
कि चल सको आदर्शों पर
सत्य की राह पर नेक बनो, श्रेष्ठ बनो
लेकिन तुमने भीड़ लगा दी तमाशों की
फिर आपस में लड़ते भी हो
न ईमान, न अच्छाई बन्द करो बचकानापन
कब कहा किसी अवतार ने
ईसा, मूसा राम ने कहा
कि करो मेरी पूजा, आराधना
तुम सस्ते और उलझाऊं रास्ते
क्यों तलाश लेते हो
क्यों बनाते हो अपना तमाशा
दुकानदारी की बात समझ आती है
कमाई है, मुनाफा है
तुम क्यों भटकते फिरते हो
अक्ल के अन्धो चालाकों के बन्दो
लुटो मत, दौड़ो मत जो बताये हैं रास्ते
उनपर चलो। बस हो गया धर्म।

## आग है जिन्दगी

कौन कहता है, मौत आयेगी
मौत से बदतर
जिन्दकी कहां बाज आयेगी।
माँ थोड़ी है
जो आंचल की छांव देगी
आग है जिन्दगी, बहुत जलायेगी।
पिता नहीं
जो सहज पाल लेगी
ठोकर है जिन्दगी
ये बार–बार गिराकर चलना सिखायेगी।
बुरा वक्त नाम की एक चीज होती है
दोस्त, भाई, प्यार, मोहब्बत
जिन्दगी बहुत कुछ छुड़वायेगी।
जिसने पैदा किया, प्यार से पाला पोसा
तुम्हारे ही हाथों ये जिन्दगी
सबकी चिता जलवायेगी।
प्यार, मोहब्बत अपने–पराये
सारी बुरी आदतें, ये जिन्दगी छुटायेगी।
मरना चाहो तो मरने न देगी
जीना चाहो तो जीने न देगी
ये जिन्दगी है जनाब
इतनी आसानी से कहाॅ रहम खायेगी।

**– देवेन्द्र कुमार मिश्रा,** पता : ए–29, फर्स्ट फ्लोर, राजुल ड्रीम सिटी, अमखेरा रोड, जबलपुर (म.प्र.)

# चिन्तन मृत्यु को ललकार

– प्रो. रघुवीर वेदालंकार

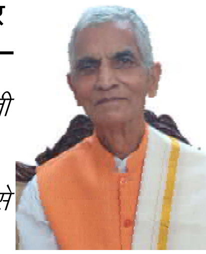

परं मृत्योरनुपरोति पन्थां यस्त्र इनरो देवयानात्।
चक्षुष्मेत श्रृण्वते ते श्रवीमीहेमे नीरा बहवो भवन्तु।।

हे मृत्यु ! तुम इधर मेरे पास मत आओ। किसी दूसरे मार्ग को पकड़ो जो मार्ग देवयान से भिन्न है, तुम उधर जाओ। तुम अन्धी बहरी नहीं हो। मेरी बात को कान खोल कर सुनलो। मेरी ओर ध्यान से देखो। मैं देवयान मार्ग का पथिक हूं। तुम्हारे वश में आने वाला नहीं। इसी मार्ग पर हमारे अन्य अनेक वीर चलें। वे भी तुम्हारे वश में न रहें।

मृत्यु से सबको भय लगता है। योग दर्शन में पांच क्लेशों में अभिनिवेश क्लेश की गणना की गयी है। अभिनिवेश का अर्थ मृत्यु भय ही है। सभी इससे भयभीत है। वेद का अध्यते मृत्यु को ललकार रहा है। वह इसका कारण भी बनता रहा है कि मैं देवयान मार्ग का पथिक हूं। मैं मत्युभय से ऊपर हूं। मृत्यु आए, किन्तु चुपचाप आकर हमें न दबाए, अपितु वह हमारी इच्छानुसार आए। हमारी मित्र बन कर आएं, भयदामक नही। मृत्यु को देखते–देखते ही मैं प्रसन्नता पूर्वक उसे कह सकूं–

*द्वार पर मेरे अरे यह, किसने दस्तक आज दी है?*
*चल उठ तैयार हो जा, किसने यह आवाज दी है?*
*मृत्यु! तुम क्यों आ गयी हो, मुझको लेने के लिए।*
*सभत हूं कटि बद्धा हूं मैं, साथ चलने के लिए।।*
*करने को स्वागत तुम्हारा, स्वयं ही मै आ रहा हूं।*
*छोड़ इस संसार को अब, प्रिय मिलन को जा रहा हूं।*
*अजर हूं मैं, अमर हूं मैं, तू मार नही सकती मुझे।*
*क्षणभंगूर यह काया अव, सौप रहा हूं आज तुझे।*
*कर्त्तव्य पूरे कर लिए, इच्छा न कोई शेष है।*
*लक्ष्य मेरा एक वह अब तो वस अखिलेश है।*
*तुम, मृत्यु मेरी मित्र हो, दुख से छुडाती हो मुझे।*
*परब्रह्म की प्रिय गोद में, सुख से सुलाती हो मुझे।*
*मैं उसी का भक्त हूं, उसमें ही अनुमस्त हूं।*
*मृत्यु से मैं क्यों डरूं, जग से पूर्ण विरक्त हूं।।*
*तुम हो मेरी नरावर्ती, जब चाहूं मैं तुम्हे बुलाऊँ।*
*यही सनातन सत्य है देवी, फिर मैं तुमसे क्यों घबराऊँ।*
*तेरी कृपा से ही मेरी, पुनर्जन्म कहीं होगा।*
*विधि विधान से दोनों का, पुनर्मिलन वहीं होगा।।*
*ले चल मुझे जहां चाहो, निर्भिक हूं सानंद हूं।*
*स्वरूप अपना जानकर, नीत अत्रर्द्वन्द्व हूं।।*

मृत्यु पर विजय पाने के लिए हमें त्र्यम्बकं परमेश्वर की आराधना करनी होगी। वेद कह रहा है– **त्र्यम्बकं यजामहे।** हम उस त्र्यम्बकं का भजन करते हैं। उनका संमति करण करते हैं, उसकी उपसना करते हैं। उपासना में भी संमतिकरण होगा। त्र्यम्बकं का अर्थ त्रिनेत्र धारी नहीं है। यहां शब्दार्थक अबिधातु है। वह परमेश्वर सर्वदा हमारे अन्तः कारणों में सत्यप्रेरणा दे रहा है। यह धातु गत्यर्वक भी है। वह त्र्यम्बकं सर्वत्त गामा अर्थात सर्वव्यापक है। त्र्यम्बकं में ही आम धात् रसा अर्थवाली भी परिणत है। वह परमेश्वर तीनों कालों में हमारी रसा कर रहा है। इसी त्र्यम्बकं से प्रार्थना की जा रही है–**मृत्योर्मुक्षीम।** हे सर्व व्यापक। हे सर्वरक्षक परमेश्वर! तु हमें मृत्यु के बन्धन से तथा इसके भ्रम से छुड़ा दे।

पता – ***बी–266 सरस्वती बिहार दिल्ली***

# पर्व-प्रेरणा हर्ष एवं उल्लास का पर्व : होली

कृष्णचंद टवाणी

आनन्द और सुख भोगों में पड़कर जीवन विलस–प्रिय और आलसी न बन जाए, यह होली का दिव्य संदेश है। **सांस्कृतिक होली :** होली का सांस्कृतिक स्वरूप, पवित्रता और प्रेम का प्रतीक है। पवित्र जीवन की दृढ़–शिला पर उन्नति का भव्य भवन खड़ा होता है। पवित्रता का मेरूदण्ड सत्य है। महापुरूषों से अनुभव से छनकर एक निश्चित सिद्धांत निकला है– **''सत्यमेव जयते नानृतम, सत्येन पन्था विततो देवयानः।''**

सत्य की सदा विजय होती है। असत्य की नहीं। सत्य दिव्य लोगों की प्राप्ति का मार्ग है। एक पुरानी कहावत है **सांच को आंच कहाँ?** होली अपनी सहस्रों से इस कहावत की प्रतिष्ठा करती है। प्रहलाद ने प्रेम और पवितत्रा का नारा ऊंचा उठाया था। समता के व्यवहार से वह जन जन का हृदय–सम्राट बन गया। सेवा की वेदी पर उसने अपना जीवन चढ़ा दिया और भक्ति तथा सत्य के मंगल मार्ग पर अग्रसर हुआ। साम्राज्यवादी हिरण्यकशिपु, अपने ही पुत्र की लोकप्रियता को न देख सका।

प्रहलाद के उदार और सम व्यवहार से उसे अपनी आसुरी नीति के अंत होने की आशंका हो गई। असाम्य, घृणा, अत्याचार और निरंकुशता के सन्मुख प्रहलाद सत्याग्रह करके खड़ा हो गया। हिरण्यकशिपु की दमन नीति प्रहलाद को विचलित न कर सकी। अंत में प्रहलाद को जला देने के लिए होलिका उसे गोदी में लेकर बैठ गई। सत्य की महिमा अपार है। होलिका अपनी ज्वालाओं में जल गई।

**आनन्द की बौछारें** :– सत्य के साथ–साथ होली सुंदरता का भी संदेश देती है। सुंदरता का मूल मंत्र प्रसन्नता है। मनुष्य को सच्चा मनुष्य बनने के लिए जितनी शिक्षा, ज्ञान और बुद्धि की आवश्यकता है, उससे कहीं अधिक आवश्यकता है प्रसन्नता की। प्रसन्नता ही जीवन है, वह सौभाग्यशाली है, जिसके मुख पर प्रसन्नता खेलती है। जीवन में सत् और चित्त का भाव रहता है परन्तु आनंद किसी ही भाग्यवान को प्राप्त होता है। आनन्द के मिलते ही जीव सच्चिदानन्दमय हो जाता है। क्षुद्र और संकीर्ण जीवन में आनन्द नहीं रहता, निराशा, मलिन और उदास जीवन से मृत्यु का बल बढ़ता है। होली आनन्द की बौछारं से जीवन को तर कर देती है, सृष्टि के बीच में लाकर मनुष्य को उमंग और उत्साह से भर देती है। सार्वजनिक उत्सव से संगठित–शक्ति, प्रेम और सद्भावना का उपहार देती है।

**जीवन का आदर्श** :– जिसे चाह और चिंताओं से छुट्टी नहीं मिलती, वह सबसे बड़ा रोगी है। जिसके मन में धुन लग जाता है वहीं दुःखी है। आलसी, शिथिल, दीन, प्रगतिहीन और निस्तेज होकर जीना केवल सिसकते हुए सांस लेना है, उसमें जीवन नहीं होता। जीवन का दर्शन वहां होता है, जहां कर्म का बोझ मन और बुद्धि को नहीं झुका पाता। उमंग और उत्साह के हाथ पैर नहीं टूटते, प्रसन्नता कुम्हलाती नहीं और आत्मा सदा हंसती खेलती रहती है।

**प्रेम** :– होली उत्सव में जितना स्थान प्रसन्नता को मिलता है, उससे अधिक प्रेम को दिया जाता है। अपनी ही प्रसन्नता नहीं, प्रेम और सद्भावना से सबकी प्रसन्नता होली का ध्येय है। भारतीय संस्कृति में वसुधैव कुटुम्बकम् की विराट कल्पना है। उदार पुरूषों के लिए सारा विश्व अपना ही परिवार है। संसार में सब अपने हैं, कोई दूसरा नहीं है। इस महाभाव का रचनात्मक रूप होली के उत्सव में देखा जाता है। प्रेमपूर्वक अपरिचित सबको हृदय से लगाकर सद्भावना सहित पुष्पमाला पहनाना, चंदन–गुलाल, अबीर आदि मांगलिक चिन्ह

लगाना—परस्पर प्रेम, मैत्री, मुदिता के द्योतक हैं। उन्नत राष्टों में प्रेम और सद्‌भावना की सहस्रमुखी धाराएँ बहाती है। प्रेम परमेश्वर का रूप है। प्रेम के बिना संसार सूना और नीरस है।

ऊँच—नीच के भेदभाव, राग—द्वेष, प्रांतीयता और दलबंदी को होली की पवित्रा अग्नि में भस्म कर देने से दशों दिशाओं में प्रकाश, प्रेम और मंगल भर जाता है। कठोर और अश्लील शब्द बोलने, किसी का ह्रदय के कोने—कोने का मैल धो डालने के लिए विश्व को शांति, प्रेम, मैत्री, करूणा और मुदिता के एक रंग में रंग देने के लिए। राष्ट्र के नवनिर्माण के लिए जिस प्रेम, सद्‌भावना, चरित्र, उत्साह, कर्मशीलता और प्रसन्नता की आवश्यकता है।

**आदर्श होली मनाएँ :—** होली आनन्द और मनोरंजन का पर्व है इसे भारतीय संस्कृति के अनुरूप निम्न बातों को ध्यान में रखकर आदर्श होली के रूप में सभी को मिलजुलकर मनाना चाहिए।

0 इस अवसर पर शराब, आतिशबाजी एवं डी.जे. म्युजिक आदि में व्यर्थ में खर्च होने वाली राशि का जरूरतमंदलोगों के लिए भोजन—नाश्ता आदि में खर्च कर मनाना चाहिए।

0 चेहरे भले ही रंग बिरंगे हों लेकिन मन बदरंग न हो किसी को भी बदले की भावना से परेशान नहीं करें।

0 विद्यालय इत्यादि में वाद—विवाद, चित्रकला, भाषण इत्यादि प्रतियोगिता आयोजित कर होली के त्यौहार में आयी विकृतियों के दुष्प्रभाव को समझावें।

0 आंखों में गुलाल तथा बालों में सूखे रंग नहीं डाले।

0 प्रेम और भाई चारे की भावना से मिलजुलकर आदर्श होली मनावें। एक दूसरे को प्रेम पूर्वक गुलाल, अबीर लगावें। ललाट पर चंदन लगावें तथा रासायनिक रंगों, पेन्ट कीचड़ आदि का प्रयोग बिल्कुल न करें। इससे आपस में लड़ाई होती है तथा प्रेम के स्थान पर द्वेषता बढ़ती है।

0 आजकल छतों से राहगीरों पर पानी भर गुब्बारे फैंकन का प्रचलन भी बढ़ रहा है इससे शरीर पर चोट आने की संभावना होती है अतः इस प्रथा का भी परित्याग करना चाहिए।

0 इस अवसर पर भांग मिश्रित ठंडाई लोगों को जबरदस्ती नहीं पिलावें।

0 कई व्यक्ति इस पर पर्व पर शराब आदि का सेवन कर अश्लील हरकतें भी करते हैं जो शोभनीय नहीं है। शिष्टाचार पूर्वक युवतियों से रंग व गुलाल से होली खेलना चाहिए। महिलाओं से अत्याधिक मजाक करते हुए उनके अंगों को स्पर्श करने का प्रयास नहीं करना चाहिए। अश्लील गीत सुनाकर एवं चित्र दिखाकर महिलाओं के साथ अभद्र व्यवहार नहीं करना चाहिए। इस त्यौहार पर फुहड़ता को त्यागकर धार्मिक भजन, रसिया आदि सुनाकर पवित्र एवं धार्मिक भावना से आदर्श होली मनाना चाहिए।

इस त्यौहार के अवसर पर वर्तमान में दुष्कर्म हत्यायें, गुण्डागर्दी, आगजनी, लूटमार, भद्दे अश्लील गीतों का गायन, कीचड़ पेंट लगाने की प्रथा आदि जो विकृतियां प्रचलित हो गई है उसे रोकना बहुत जरूरी है। समाज सुधारकों एवं संस्थाओं को इस अवसर पर उपर्युक्त बातों का ध्यान में रखने के लिए अधिकाधिक प्रचार करना चाहिए ताकि हम इस आनन्द के त्यौहार को उल्लास एवं हर्ष के साथ मनाकर भरपूर मनोरंजन कर सकें।

*पता—प्रधान सम्पादक, अध्यात्म अमृत, सिटी रोड, मदनगंज, किशनगढ़ (राज.) 305801*

## *नववर्ष में नूतनता*

*वर्ष और वर्षा दोनों का निकट सम्बन्ध है। वर्षा को प्राप्त करके भूमि समृद्ध रुप को प्राप्त करती है, जहां उसका सौन्दर्य देखते बनता है, वहीं वह सभी प्राणियों को भोजन उपलब्ध कराने की योग्यता प्राप्त करती है । जिस प्रकार वर्षा को प्राप्त करके पृथ्वी खाद्यान्न को धारण करती है, उसी प्रकार मनुष्य को नववर्ष में नवीनता को धारण करते हुए समस्त ब्रह्माण्ड के लिए अपने को उपयोगी बनाना चाहिए । इस नववर्ष में हम सभी स्वार्थ से ऊपर उठकर सबके कल्याण के प्रति समर्पित हो सकें, ऐसी परमात्मा से प्रार्थना है ।*

सामयिक

रामनवमी पर विशेष

# आज श्रीराम के चित्र से अधिक चरित्र की जरूरत है

– श्रीमती सुकांती शास्त्री

भारतीय इतिवृत्त के इस निशाकाल के तिमिरावृत नभोमण्डल में कई ऐसी ज्योतियाँ जगमगा रही हैं, जो संसार मरूस्थली के मार्गभ्रष्ट पथिकों को पथ–प्रदर्शन करके अपनी जीवनयात्रा को पूरी करने में सहायता देती रहती है परन्तु उनमें इक्ष्वाकु कुल–कुमुदचन्द श्रीरामचन्द्र जी का सर्वोत्कृष्ट समुज्ज्वल प्रकाश ही इस कड़ी मंजिल को अन्त तक पहुंचाने या पूरी करने में सहायक और सबसे बढ़कर पथ प्रदर्शक है। यदि इस घनघोर अन्धियारी रात्रि में जगद्वन्द्य श्रीराम के आदर्श जीवन की जाज्वल्यमान शीतल किरणावली का प्रकाश प्रसार न पाता तो भारतीय यात्री का कहीं ठिकाना न था। इस सूचिभेद्य अन्धकार में उनको न जाने कहाँ से कहाँ भटकना पड़ता। यदि पूर्ण परिश्रम से संसार के समस्त स्मरणीय जनों की जीवनियाँ एकत्र की जायें तो हमको उनमें से किसी एक जीवनी में वह सर्वगुणराशि एकत्र न मिल सकेगी, जिससे सर्वगुणागार श्रीराम का जीवन भरपूर है। वस्तुतः श्रीराम का जीवन सर्वमर्यादाओं का ऐसा उत्तम आदर्श है कि मर्यादापुरूषोत्तम की उपाधि केवल उनके लिए रूढ़ हो गई है। जब किसी को सुराज्य का उदाहरण देना होता है तो **"रामराज्य"** का प्रयोग किया जाता है। महात्मा गांधी भी यावज्जीवन रामराज्य की बात करते रहे।

मर्यादा पुरूषोत्तम राम का स्मरण आते ही एक ऐसे महान् पुरूष का चित्र आँखों के सामने प्रकट हो जाता है जो सम्पूर्णरूप से वैदिक संस्कृति के मूल आदर्शों का प्रतिमान हो। जितनी विशेषताएँ मर्यादा पुरूषोत्तम राम के जीवन में मिलती है, उतनी संसार के किसी अन्य महापुरूष में नहीं। यही कारण है आज करोड़ों वर्ष व्यतीत होने के बाद भी भारतयी समाज के मानस पटल पर श्रीराम यथावत् अंकित हैं। हम प्रतिवर्ष जन्मदिन मनाकर आनन्दित होते हैं।

**तपःस्वाध्यायनिरतं4 तपस्वीवाग्विदांवरम्,**
**नारदं परिपप्रच्छ बाल्मीकिर्मुनिपुङगवम्।**
**कोन्वस्मिन्साम्प्रतं लोके गुणवान्कश्चवीर्यवान्,**
**धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढव्रतः।।**

अर्थात् तप एवं स्वाध्याय में संलग्न वाग् विलक्षण मुनिश्रेष्ठ नारद से महर्षि वाल्मीकि ने एक बार पूछा–इस समय संसार में ऐसा कौन व्यक्ति है, जो गुणवान्, शक्तिमान्, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवादी व दृढ़संकल्प वाला है। ऐसा पूछने पर नारद ने कहा –**नूनं ते दुर्लभाःदेव! ये त्वया कीर्तिता गुणाः** अर्थात् इस प्रकार सभी गुणों से संपन्न व्यक्ति मिलना नितान्त कठिन है, किन्तु इनमें से अधिकांश गुणयुक्त इस धरती पर केवल एक ही मानव है; जो रामो नाम जनैः श्रुत याने राम के नाम से जन मानस में विख्यात है। आइए देखें उस महामानव में ऐसे कौन से गुण थे जो उन्हें असाधारण कोटि में ला खड़ां करते हैं।

**निस्पृहता** :– जब कैकेयी ने, राम–पिता की आज्ञा का पालन कर भी पाऐंगे ? इस विषय में शंका प्रकट की थी, तब उन्होंने इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखे जाने वाले शब्दों द्वारा कहा था–देवि, महाराज जो चाहते हैं, मुझे बताइए। मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि मैं उसे पूर्ण करूगां, क्योंकि राम दो तरह की बात नहीं करता।

**तद्ब्रूहि वचनं देवि राज्ञा यदभिकाङ्क्षितम्।**
**करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते।।**

जब स्वयं महाराज दशरथ विचलित हो गये थे और प्राणाभिराम श्रीराम से यहाँ तक बोले थे कि वत्स–

**अहंराघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः,**
**अयोध्यायान्त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम्।।**

तुम मुझे कैद करके अवध–सिंहासन पर बैठ जाओ, पर वन न जाओ, तब भी श्रीराम ने दृढ़ उत्तर

दिया था मुझे न राज्यसुख की, न भूमण्डल के सारे भोगों की, न स्वर्ग की और न जीवन की ही इच्छा है। मेरी एक ही इच्छा है कि आप सत्यवादी बने रहें और आप का वचन झूठा न पड़े। अब मैं यहाँ एक क्षण भी नहीं ठहर सकता। आप अपने शोक को अपने अन्दर ही रोकें। अपने निश्चय के विरूद्ध आचरण में मैं असमर्थ हूँ। उन्होंने यह भी कहा था कि लोभ मोह व अज्ञान किसी भी कारण से वे सत्यसेतु को नहीं तोड़ सकते, और यहाँ तक कि चन्द्रमा से उसकी कान्ति बिछुड़ जाए, हिमालय हिम को छोड़ दे या यागर अपनी सीमाओं को लांघ कर बढ़ जाए पर वे पिता की प्रतिज्ञा को नहीं तोड़ सकते। जीवनसमा जानकी से भी उन्होंने यही कहा था कि हे सीते, मैं अपना जीवन छोड़ सकता हूँ–तुम्हें भी लक्ष्मण सहित छोड़ सकता हूँ पर प्रतिज्ञा को कभी नहीं छोड़ सकता।

**वीरता** :– श्रीराम ने क्षात्रधर्म का पालन केवल शौर्य में ही नहीं किया, वरन् उससे श्री बढ़कर औदाय में भी किया। रणक्षेत्र में श्रीराम के प्रखर शरों से जब रावण का धनुष भी तुकड़ा –तुकड़ा हो गया उस समय उसकी कैसी दशा हुई होगी, सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। चाहते तो वे उसको उसी समय समाप्त कर सकते थे, किन्तु धर्ममूर्ति राम ऐसा कैसे करते ? वे उसे ढाढस बंधाते हुए बोले कि आज तुमने अत्यंत घोर संग्राम किया है और मेरे प्रमुखों को भी मार डाला है। किन्तु तुम्हें थका हुआ समझकर मैं तुम्हें मृत्यु के अधीन नहीं करता। तुम थके हो, पीड़ित हो लंका में जाकर ताजा होकर रथ और धनुष के साथ लौटो; तब मेरा बल देखना –

**कृतं त्वया कर्म महत्सुभीमं,**
**हतप्रवीरश्च कृतस्त्वयाहम्।**
**तस्मात्परिश्रान्त इति व्यवस्य,**
**न त्वां शरैर्मृत्युमुखं नयामि।।**
**प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं,**
**प्रविश्य रात्रिचरराज लङ्काम्।**
**आश्वस्य निर्याहि रथी च धन्वी,**
**तदाबलं प्रेक्ष्यसि में रथस्थः।।**

क्या श्रीराम के इस व्यवहार की तुलना आज के इस सभ्यतम युग में किसी से हम कल्पना भी कर सकते हैं ?मर्यादा पुरूषोत्तम राम सत्य के मानो अवतार स्वरूप ही थे उनकी तुलना सत्य के विषय में स्वयं धर्म ही कर सकता है :– **सत्ये धर्म इवापरः** उनका विश्वास था कि धर्म का पर्यवसान सत्य में ही होता है और सत्य ही सबका मूल है, सत्य ही ईश्वर है और सत्य पर ही धर्म टिका है। सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं। दान, यज्ञ, होम, तप एवं वेद, सब सत्य पर ही ठहरे हुए है, अतः मनुष्य सदा सत्य पर टिका रहे। भगवान् राम की यह स्पष्ट उद्घोषणा थी कि **अनृतं नोक्तपूर्वं मे न च वक्ष्ये कदाचन** अर्थात् न मैंने कभी असत्य बात कही है और ना ही कहूंगा। काश ! सच्चाई का यह आत्मबल हम तथाकथि रामभक्तों में आ पाता तो, इस राष्ट्र को स्वर्णिम होने में कोई नहीं रोक सकता।

**पितृभक्ति** :– श्रीराम की पितृभक्ति और मातृभक्ति का उपमान संसारभर के इतिहासों या काव्यों में दुर्लभ है। जरा उन्हीं के मुखारविन्द से सुनिए–

**अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके।**
**भक्षयेयं विषं तीक्ष्णं पतेयमपि चार्णवे।**
**नियुक्तो गुरूणा पित्रा नृपेण च हितेन च।।**

अर्थात् मैं महाराज के कहने पर अग्नि में कूद सकता हूं, तेज जहर खा सकता हूँ, या समुद्र में भी कूद सकता हूँ। है कोई ऐसा विरला उदाहरण संसार के इतिहास में ? जिसमें पितृभक्ति का यह अनुपम निदर्शन मिल सके। उन्हें पता था कि महाराज दशरथ के मतिविभ्रम मूल में उनकी कामपरवशता थी। पर कुछ भी हो, पिता की आज्ञा किसी भी स्थिति में दी गई हो– वह पुत्र के लिए अलंघ्य है। उनकी दृष्टि में तो–

**लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान्वा हिमं त्येजत्।**
**अतीयात् सागरो बेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः।।**

**मातृभक्ति** :– माता की भक्ति तो स्वाभाविक है, पर श्रीराम ने तो विमाता की भक्ति का भी अद्भुत उदाहरण उपस्थित किया है। स्वयं कैकेयी ने कहा था कि राम कौशल्या से भी बढ़कर उनकी सेवा किया करते थे। पर इससे भी बढ़कर आश्चर्य यह है कि कैकेयी द्वारा निर्ममता से वन भेजे जाने पर भी श्रीरामचन्द्र के हृदय में कोई अन्तर न आया। भरत कैकेयी से कितने क्षुब्ध थे, इसका श्रीरामचन्द्र को ज्ञान था। अतः चित्रकूट से

अयोध्या लौटते समय उन्होंने भरत को अपनी सीताजी की सौगन्ध देते हुए कहा था – **मातरं रक्ष कैकेयीं मा रोषं कुरू तां प्रति। मया च सीतया चैव शप्तोऽसि रघुनन्दन।**

रघुनन्दन, तुम्हें मेरी और सीता की सौगन्ध है। तुम माता कैकेयी की रक्षा करना और उनके प्रति कभी रोष न करना। एक बार जब वन में लक्ष्मण जी ने कह दिया कि दशरथ जिसके पति हों, भरत सरीखा जिसका साधु पुत्र हो वह माता कैकेयी इतीन क्रूर दृष्टिवाली कैसे हो गई ? तो श्रीराम ने उन्हें रोक कर कहा था–

**न तेऽम्बा मध्यमा तात गर्हितव्या कदाचन।**
**तामेवेक्ष्वाकुनाथस्य भरतस्य कथां कुरू।।**

भैय्या तुम्हें मंझली माता कैकेयी की इस प्रकार निन्दा नहीं करनी चाहिए। अपितु इक्ष्वाकु नरेश भरत की ही बात करो।

**भ्रातृस्नेह** :– श्रीराम के भ्रातप्रेम के भी एक दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं। वे सीता को समझा रहे हैं, कि भरत और शत्रुघ्न उन्हें प्राणों से भी बढ़कर हैं, अतः उन्हें उन दोनों को अपने भाई और पुत्रों के समान देखना चाहिए–

**भ्रातृपुत्रसमौ चापि द्रष्टव्यौ च विशेषतः।**
**त्वया भरतशत्रुघ्नौ प्राणैः प्रियतरौ मम।।**

लक्ष्मण के प्रति कही श्रीराम की निम्नांकित वाणी से बढ़कर भ्रातृप्रेम का अमृत कहाँ मिलेगा ?

**न विना भरतं त्वां च शत्रुघ्नं चापि मानद।**
**भवेन्मम सुखं किंजिद्भस्मसात्कुरू तं शिखी।।**

मानद लक्ष्मण ! भरत को, तुमको और शत्रुघ्न को छोड़कर यदि मुझे कोई सुख मिलता है तो उसे आग जला डाले।

**आदर्श दाम्पत्य प्रेम** :– जानकी के प्रति श्रीराम के प्रेम का निरूपण करने में रामायण में मनोभावों की बड़ी गहरी दृष्टि, दृष्टिगोचर होती है। पत्नी के वियोग में पति की विकलता स्वाभाविक है। पर राम की विकलता की तो बात ही और है। वह चहुँमुखी थी –

**इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिः परितप्यते।**
**कारूण्येनानृशंश्येन शोकेन मदनेन च।।**
**स्त्री प्रणष्टेति कारूण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः।**
**पत्नी नेष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च।।**

यह वह सीता है जिसके लिए श्रीराम चार कारणों से तड़प रहे हैं–करूणा से, आश्रितवत्सलता से, शोक से और काम से। अबला स्त्री की रक्षा करना पुरूष का कर्त्तव्य है–वह न निभा सकने के कारण राम को करूणा है। वह श्रीराम के ही आश्रित थी विशेषकर वन में, आश्रित की रक्षा नहीं हो पाई, अतः राम की आश्रितवत्सलता उन्हें कचोट रही है। धर्मपत्नी जो कि त्रिवर्ग का मूल है, उसके नष्ट हो जाने के कारण उन्हें शोक था और प्रियतमा के नष्ट हो जाने से प्रेम मूलक। इस तरह के गुणों से सम्पन्न भगवान् राम का जीवन निश्चित रूप से समग्र मानवता एवं माननीय संवेदना का प्रकृष्ट निदर्शन है।

आईये ! मर्यादा पालक श्रीराम के जन्म के अवसर पर उनके सर्वांगपूर्ण व्यक्तित्व का चिंतन कर अपने जीवन को उत्कृष्ट से उत्कृष्ट तर बनाने की दिशा में पुरूषार्थ करें। इस जीवन की सार्थकता इस बात में नहीं है कि किसने कितना श्रम किया बल्कि यह अधिक सार्थक एवं महत्वपूर्ण है कि किसका श्रम सद्वृत्तियों के विकास में लगा हुआ है।

पसीने की बूंदे भार ढोने वाले मजदूर भी बहाते हैं उनका जीवन भी सफल है। किन्तु मनुष्य जीवन की सार्थकता उस पुष्प के समान विकसित व सुगंधित होने में ही है जो बदले में कभी अपेक्षा नहीं रखता और निरंतर सौरभ बांटते रहता है। महापुरूषों की जयंतियाँ प्रतिवर्ष आती है और चली जाती है उस अवसर पर केवल मात्र थोड़ा हम गुण कीर्तन करके अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। इससे कुछ परिलब्धि होने वाली नहीं है। इसी प्रकार भगवान राम का स्मरण व जन्मोत्सव मनाने की सार्थकता तभी है जब हम उनके बताये हुए मार्ग पर चलें। हम जहां कहीं भी जिस किसी परिस्थिति में जीवनयापन कर रहे हों, किन्तु हमारे जीवन में परिवार के प्रति, समाज के प्रति एवं राष्ट्र के प्रति अपने दायित्वों का ईमानदारी से पालन करें। प्रभु से प्रार्थना है हमें कर्त्तव्य मार्ग पर डटे रहने की प्रेरणा दें जिससे सब मिलजुलकर सुखी समृद्ध व सशक्त समाज के नवनिर्माण में सफल हो सकें।

*पता–बी/8 धरमकालोनी, छाल, रायगढ़, 496665*

मन्थन

चैत्रशुक्ल प्रतिपदा आर्यसमाज स्थापना दिवस पर विशेष

मनुदेव 'अभय' विद्यावाचस्पति, एस.ए.

# आर्यसमाज में संख्यात्मक नहीं गुणात्मक विकास की आवश्यकता

## संख्यात्मक नहीं गुणात्मक परिवर्तन आवश्यक

"आर्यसमाज में हमने प्रवेश किया, पर हमने आर्यसमाज प्रवेश न कर पाया। अनेक आर्यसमाजी आधे तीतर आधे बटेर की जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आर्यसमाज में आधे तरबूज व आधे खरबूजों की घुसपैठ बड़ी संख्या में हो रही है। इन घुसपैठियों के रास्तों को हमें रोकना होगा। मात्रात्मक परिवर्तन की अपेक्षा गुणात्मक परिवर्तन अधिक आवश्यक है। संख्यात्मक आधार पर संख्या का विस्तार निरर्थक सिद्ध हुआ है।" स्वा.सोमनन्द का वाजेगांव में दिया गया अंश

आर्यसमाज एक ऐसा क्रांतिकारी संगठन है, जिसके माध्यम से व्यक्ति परिवार, समाज तथा राष्ट्र को चरम उन्नति के द्वार तक पहुंचाया जा सकता है। आर्यसमाज क्षेत्र किसी निश्चित सूबे प्रान्त तथा भारत राष्ट्र तक सीमित नहीं है। वेद के अनुसार **"यत्र विश्वं भवत्येक नीडम्"** अर्थात यह सम्पूर्ण विश्व एक नीड़ अर्थात् घोंसले की तरह है, एक घर, कुटिया या कुटुम्ब की तरह है, जिसमें निवास करने वाले सभी प्राणी–मनुष्य (स्त्री–पुरूष) परस्पर दुःख–सुख के साथी एवं परस्पर सहयोगी सदस्य है। अथर्ववेद का स्पष्ट आदेश है–

**"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"** अर्थात् मैं भूमिपुत्र हूँ, मेरी जननी यह पवित्र भूमि (राष्ट्र देश) है, किन्तु मैं सम्पूर्ण पृथिवी का सुपुत्र/नागरिक हूँ। क्या विशाल दृष्टिकोण है। संसार की किसी भी धर्म, पुस्तक में किसी भी संस्कृति सभ्यता में इसका विशाल और बृहत्तर विचार, संस्कार उपलब्ध नहीं है। संस्कृति विश्वाचरण अर्थात् विश्व की सर्वश्रेष्ठ संस्कृति वैदिक संस्कृति है। प्रसंगानुसार मंत्र में प्रयुक्त भूमि और पृथिवी इन दो पदों का अर्थ गहराई से जानने का प्रयत्न करें। तभी तो व्यक्ति की भावना संस्कार और आदर्शो का ज्ञान हो सकेगा।

इस मंत्र में प्रयुक्त पद भूमि से यह तात्पर्य है कि जिस ग्राम/नगर में मैं उत्पन्न हुआ हूँ उस ग्राम/जिला/प्रान्त तथा देश का मैं नागरिक हूँ। जिस देश की मृदा–मिट्टी से मेरा यह शरीर बना है, जिस देश में उत्पन्न दुधारू पशुओं का दूध तथा खेतों में उत्पन्न अन्न और औषधियों से यह शरीर हुष्ट–पुष्ट हुआ है, जिस देश के ऋषियों–मुनियों आप्त पुरूषों तथा महापुरूषों द्वारा प्रदत्त ज्ञान द्वारा मेरा मानसिक–बौद्धिक विकास हुआ है, उसके आध्यात्मिक उपदेशों से मेरी आत्मा का विकास हुआ है जिस देश की नदियों, तालाबों, झरनों वनों–वाटिकाओं द्वारा मुझे विविध प्रकार का सुख प्राप्त हुआ है वे सब मेरे लिए पूज्य और प्रिय हैं। मैं उन सबके उपकारों के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। वही मेरा देश है और मैं उसका नागरिक हूँ। देशोन्नति, रक्षा–सुरक्षा के प्रति मैं सदैव तैयार रहूंगा। यदि देश सुरक्षित है, तो मेरा परिवार और समाज सुरक्षित है। एक सुरक्षित राष्ट्र में आध्यात्मिक चेतना का विकास होता है। यह सर्वमान्य सिद्धांत है।

मेरा यह प्रिय राष्ट्र इस विशाल पृथ्वी का एक भू–भाग है। इस पृथिवी पर और अनेक राष्ट्र हैं, जिनमें इस देश के समान ही स्त्री–पुरूष, पशु–पक्षी, नदी–सरोवर तथा सुन्दर समुद्र है। पृथिवी के सभी राष्टों के निवासी परस्पर एक परिवार के सदस्यों के समान है। मैं अपनी मातृभूमि

में रहकर कोई ऐसा कार्य न करूं, जिससे अन्य राष्ट्रों के नागरिकों को पीड़ा पहुंचे। मैं प्रथमतः अपने देश का निष्ठावान नगरिक हूँ, तत्पश्चात् इस पृथ्वी के अन्य राष्ट्रों के प्रति सद्भावना तथा समान की भावना रखता हुआ मैं विश्व नागरिक भी हूँ। इन राष्ट्रों में निवास करने वाले नागरिकों में एक ही ईश्वर की सत्ता का दर्शन करता हुआ, मनुष्यता के नाते उनका सम्मान करता हूँ। मेरे राष्ट्र के समान विश्व के अन्य राष्ट्र भी परमात्मा की इस भूमि पर बसे हुए हैं, इसलिए वे मेरे समान ही विश्व के नागरिक हैं।

विस्तार से इतनी महत्वपूर्ण बातें लिखने का मुख्य कारण यह कि प्रत्येक आर्य की मानसिक पृष्ठभूमि उपर्युक्त आदर्शों पर आधारित रहती है। आर्यसमाज के संगठन की सर्वोच्च संस्था सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा नई दिल्ली–2 के विवादों को हल करने की जिम्मेदारी तीन या चार सम्माननीय न्यायमूत्तियों को सौंपी गई। इन सभी सम्माननीय न्यायमूर्तियों ने भी वादी को कहा था–हमारी मानसिक पृष्ठभूमि और आस्थाएँ आपकी ही तरह वैदिक धर्म में है। वादी–प्रतिवादी परस्पर मिलकर न्यायलय के परिक्षेत्र से दूर–दूर रहकर इस वाद में पड़ी कठिनाईयों को स्वयं हल कर लें। अब पाठक समझ गये होंगे कि मानसिक पृष्ठभूमि का समाज में कितना महत्व है।

समस्या इस समय जटिल हो जाती है, जिस समय श्रद्धावाद वैदिक धर्मी अपने आदर्शों के आधार पर अपने संगठन को दृढ़ बनाये रखना चाहते हैं और आगे बढ़ना चाहते हैं। परन्तु संगठन में सभी श्रद्धावान और निष्ठावान नहीं होते। ऐसे तत्वों को कथित इस विशेषण को दिया जाता है। कथित सदस्यों का सहयोग तभी तक प्राप्त होता रहता है, जब तक उनके स्वार्थ पर आँच नहीं आती। संगठनात्मक नियम–उपनियम का पालन भी वे बाह्य रूप में करते दिखाई पड़ते हैं, परन्तु उनकी विचारधारा की पृष्ठभूमि और मानसिकता उससे जुड़ी नहीं रहता। बस, यहीं से उस संगठन में मतभेद के साथ मनभेद की दरारे पड़ने लगती है। आर्यों का आदर्श तथा मत निम्नलिखित पद्यात्मक पंक्तियों में व्यक्त है – कवि अश्विनी कुमार पाठक के शब्दों में –

**आर्य हमारा नाम है, वेद हमारा धर्म।**
**ओ३म् हमारा देव है, यज्ञ हमार कर्म।।**
**सत्य हमारा लक्ष्य है। गायत्री महामंत्र है।**
**भारत अपना देश है, यह सदा रहे स्वतंत्र।।**

इतना ही नहीं एक श्रद्धालु, वैदिक धर्मी की आत्मिक, सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक भावनाएँ धर्म, समाज और राष्ट्र के लिए अधोलिखित प्रार्थना की शब्दावली में है। प्रत्येक वैदिक धर्मी आर्य अपने राष्ट्र के प्रति कितना ऊँचे भाव रखता है, पढ़िये –

हे परमेश्वर ! इस पावन भारत भूमि पर कभी भी विदेशी शासन न होने इस भारत वर्ष में सदैव स्वराज्य रहे। सभी सुखों का भण्डार यह मेरा देश सदैव स्वाधीन, सम्पन्न, सुखी और सम्मानित रहे। हमारा वैदिक धर्म सदैव और सर्वत्र फैले और हमें कभी भी वेद विरोधी विदेशी मत और विदेशी राजा का दास न होना पड़े। हम स्वदेश, स्वधर्म और स्वाभिमान की सदैव रक्षा करने में प्रयत्नरत बने रहें। स्वराज्य में हमारे गौरव, गरिमा और स्वाभिमान रहे।

आर्यसमाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द वेदों को स्वतः प्रमाण मानते थे जो कि बुद्धि आधारित सिद्धांत है। उनकी दृढ़ धारणा था कि मनुष्य अल्पज्ञ तथा कर्मबंधन से जुड़ा हुआ है, उस पर उसके पूर्व जन्मों के संस्कार सूक्ष्म शरीर में विद्यमान रहते हैं, इस कारण उनके स्वभाविक ज्ञान के अतिरिक्त नैमित्तिक ज्ञान में कहीं न कहीं त्रुटि तो बनी रहती है। वे स्वयं भी अपने आपको मनुष्यों की अल्पज्ञों की श्रेणी में रखते थे। स्वामी जी महारा को ईश्वर, वेद और इनकी बनाई हुई व्यवस्था पर बड़ा विश्वास था। इन पंक्तियों में लेखक कभी–कभी उन्हें सत्यमूर्मि कह दिया करता है संसार में ऋत

अर्थात् प्राकृतिक शक्तियां और उनके अटूट अगम तथा सत्य अर्थात लौकिक जगत के चैतन्य प्राणियों के व्यवहार तथा नियम, इन्हीं दोनों ऋत तथा सत्य का ही विश्व (यूनीव्हर्स) है। यह सब क्रीड़ा जगत है। सभी चक्र विद्यमान है, परन्तु इन पर उस प्रभु का नियंत्रण है। वह – चितन जगत में अन्दर तथा बाहर से व्याप्त है। वह पास है और दूर भी है। उसकी प्रेरणा ही चैतन्य जत की अद्भुत शक्ति है।

उपरोक्त तथ्यों का प्रस्तुतीकरण का एक मात्र उद्देश्य यही है कि आर्य समाज में प्रविष्ट होने के इच्छुकों को ऋषि दयानन्द के मन्तव्यों को भली भाँति समझ लेना चाहिए। विगत छः दशकों से आर्यसमाज के वातावरण में रहने के पश्चात् यह अनुभव कर पाया हूँ कि आर्यों के इस असंख्य गैर विशाल समुदाय में प्रायः 40–50 प्रतिशत ही आर्यसमाज के वैदिक सिद्धांतों को समझते एवं तदनुरूप जीवन व्यतीत करते है। बस यही 40–50 प्रतिशत आर्यसमाज की गुणात्मक पूंजी या सम्पत्ति है। शेष कथित आर्यों की कोटि में गणना करने योग्य है।

कहने का तात्पर्य यह है कि हमें वर्तमान में खड़े होकर स्वर्णिम 'भूत' को स्मरण करना अनिवार्य है। कोई भी व्यक्ति या परिवार अथवा समाज अपने स्वर्णित गुण–गाथा गाकर या सुनाकर जीवित नहीं रह सकता हाँ, उनमें प्रेरणा प्राप्त कर सकता है। हमारा भूत ही हमारा आदर्श है और प्रेरणा का स्रोत हो सकता है। परन्तु अपने 'भव्यम' भविष्य को स्वर्णिम बनाने के लिए त्याग, निष्ठा, परिश्रम तथा लक्ष्य को निश्चित कर लक्ष्मण बनाना अनिवार्य है। सम्प्रति, आर्यसमाज के मंच तथा पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से केवल और केवल 'स्वर्णिम भूत' की अत्यधिक चर्चा की जाती है। यदि इसे सीमित कर वर्तमान में उलझी हुई समस्याओं, संगठन की बिखरी शक्तियों कथित नेताओं के व्यवहार से सजग रहने की ओर शक्ति लगा दी जाय तो अधिक लाभ होगा। आर्यसमाज के सशक्त मंच तथा सबल संगठन चल अचल सम्पत्ति देश–विदेश में बढ़ते हुए सांस्कृतिक–धार्मिक प्रभाव के कारण विभिन्न वर्गों के लोग इस ओर आने लगे हैं। इससे निःसंदेह आर्यसमाज का संख्यात्मक विकास हुआ है।

आर्यसमाज की वास्तविक शक्ति उसका अपना गुणात्मक विकास है। संख्यात्मक विकास में अधिकांश ऐसे तत्व हैं जो विभिन्न अवसरों पर अपनी लौकिक स्वार्थ पूर्ति के लिए अपनी टोपियां और आवरण बदल लेते हैं। ऐसे आवरण बदलुओं से ही आर्यसमाज की वैदिक मान्यताओं पर लिखित आक्षेप करने लगे हैं, जिन्हें प्रत्युत्तर भी दिया जा रहा है। ये आरोप या आक्षेप कर्त्ता कथित पुराने आर्य है, जिन्हें लौकिक ऐषणाएँ गुमराह कर रही है। इसलिए आज आर्यसमाज के गुणात्मक विकास की वास्तविक अनुयायियों को ऋषि दयानन्द पर श्रद्धा रखने वालों की नितान्त आवश्यकता है। ध्यान रहे हमारा भूत भी स्वर्णिम और महान था और अब भविष्य भी स्वर्णिम तथा महान है। ईश्वर की कृपा का वरदहस्त भी है।

*पता : सुकिरण, अ/13, सुदामा नगर, इंदौर (म.प्र)*

# वैराग्य

**निद्राच्छेदे पुनिश्चतं निर्वेदेनैव भावयेत् ।**
**सभग्भावितिनिर्वेदः सद्यो निर्वाति चेतनः ।।**

**नींद टूटने पर मन को संसार और शरीर–विषयक वैराग्य से ही सुसंस्कृत करें, धनादि की चिन्ता न करें । इसीलिए वैराग्य कहा है, क्योंकि ठीक रीति से वैराग्य का अभ्यास करने वाला आत्मा शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त करता है ।**

*– धर्मामृत (15/28)*

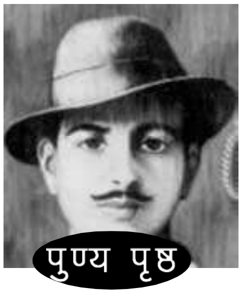


फांसी की बेला पर साथियों को शहीद भगतसिंह का अंतिम पत्र

# मुझसे ज्यादा खुशकिस्मत कौन होगा

23 मार्च बलिदान दिवस

**भगतसिंह द्वारा फांसी की बेला पर साथी क्रान्तिकारी दुर्गा भाभी को लिखे लम्बे पत्र की कड़ी में, अमर शहीद की लेखनी से उसी बेला में लिखा यह संक्षिप्त पत्र भविष्य की पीढ़ियों को भगतसिंह के जीवन और क्रान्ति-कर्म की अनुकरणीय साक्षात्कार कराता है।**

**साथियों,**

जिन्दा रहने की ख्वाहिश कुदरती तौर पर मुझमें भी होनी चाहिए। मैं उसे छिपाना नहीं चाहता, लेकिन मेरा जिन्दा रहना मशरुत सशर्त है, मैं कैद होकर या पाबन्द होकर जिन्दा रहना नहीं चाहता मेरा नाम हिन्दुस्तानी इन्कलाबी पार्टी का मरकजी निशान बन चुका है और इन्कलाब पसन्द पार्टी के आदर्शों और बलिदानी ने मुझे बहुत ऊँचा कर दिया है, इतना ऊंचा कि जिन्दा रहने की सूरत में इससे ऊंचा मैं हरगिज नहीं हो सकता। आज मेरी कमजोरियां लोगों के सामने नहीं है। अगर मैं फांसी से बच गया तो जाहिर हो जायेगी और इन्कलाब का निशान मद्धिम पड़ जायेगा या शायद मिट ही जाय, लेकिन मेरे दिलेरान ढंग से हंसते-हंसते फांसी पाने की सूरत में हिन्दुस्तानी माताएँ अपने बच्चों के भगतसिंह बनने की आरजू किया करेंगी और दश की आजादी के लिए बलिदान होने वालों की तादाद इतनी बढ़ जयेगी कि इन्कलाब को रोकन साम्राज्यवाद की तमामतर कोशिशों के भी बस की बात न रहेगी। हाँ, एक विचार आज भी चुटकी लेता है। देश और इंसानियत के लिए जो कुछ हसरतें मेरे दिल में थीं, उनका हजारवाँ हिस्सा भी मैं पूरा नहीं कर पाया। अगर जिन्दा रह सकता तो शायद इनको पूरा करने का मौका मिलता और मैं अपनी हसरतें पूरी कर सकता। इसके सिवा कोई लालच मेरे दिल में फांसी से बच रहने के लिए कभी नहीं आया। मुझसे ज्यादा खुशकिस्मत कौन होगा ? मुझे आजकल अपने आप पर बहुत नाज है। अब तो बड़ी बेताबी से आखिरी इम्तेहां, अन्तिम परीक्षा का इन्तजार है। आरजू है कि यह और करीब हो जाये।

**– साधार-राजधर्म**

# जीवन का वास्तविक उद्देश्य

**आहारार्थे कर्म कुर्य्यादनिन्द्यं कुर्यादाहारं प्राणसन्धारणाय।**
**प्राणाः सन्धार्या तत्विजज्ञासनाय तत्वं जिज्ञास्यं येन भूमौ न जन्म॥**

**भावार्थ :-** आखिर मनुष्य जीवन उद्देश्य क्या है ? **पुनरपि जननं पुनरपि मरणं**-तो सभी सांसारिकों का होता ही है। कुछ तो सोचिये भला ? क्या-आपने कभी विचार किया ? यह कटु सत्य है कि आहार की आवश्यकतार्थ मनुष्य को श्रेष्ठ जीवकोपार्जन के लिए दत्तचित्त एवं तत्पर रहना चाहिए। परन्तु अनिन्ध कर्मों के द्वारा ही आजीविका को अपनावें यह ठीक नहीं। यदि पाप अन्याय छल-कपट से धन कमायेंगे तो वह कभी सुखदायी नहीं होगा उससे अशान्ति ही मिलेगी और आहार भोजनादि की आवश्यकता मनुष्य के लिए क्यों है ? इसलिए न कि -प्राणों का धारण ही अन्न से किया जाता है। **अन्न वै प्रजापतिः** अन्न को विधाता कहा गया है यदि अन्न ही नहीं ग्रहण किया जाए तो सांसारिक प्राणी जीवित नहीं रह सकता। अतएव उदरपोषणार्थ, प्राणसन्धारणार्थ मनुष्य आहार का सेवन अवश्य करें। **– सुभाषित सौरभ**

# माँ का सम्मान

एक मध्यम वर्गीय परिवार के एक लड़के ने 10वीं की परीक्षा 90 प्रतिशत अंक प्राप्त किए। पिता ने मार्कशीट देखकर खुशी–खशी अपनी बीवी को कहा कि बना लीजिए मीठा दलिया, स्कूल की परीक्षा में आपके लाड़ले को 90 प्रतिशत अंक मिले हैं....!

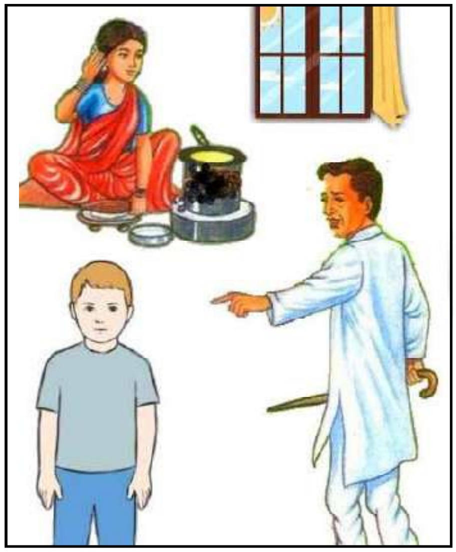

इसी बीच लड़का फटाक से बोला....''बाबा उसे रिजल्ट कहाँ दिखा रहे हैं ?...क्या वह पढ़–लिख सकती है ? वह अनपढ़ है....!''

अश्रुपूर्ण आँखों को पल्लु से पोंछती हुई माँ दलिया बनाने चली गई।

ये बात पिता ने तुरंत सुनी....! फिर उन्होंने लड़के के कहे हुए वाक्यों में जोड़ा, और कहा....''हां रे ! वो भी सच है...! जब तू गर्भ में था, तो उसे दूध बिल्कुल पसंद नहीं था, उसने तुझे स्वस्थ बनाने के लिए हर दिन नौ महीने तक दूध पिया... क्योंकि वो अनपढ़ थी ना...!

तुझे सुबह सात बजे स्कूल जाना होता था, इसलिए वह सुबह पांच बजे उठकर तुम्हारा मनपसंद नाश्ता और डिब्बा बनाती थी....क्योंकि वो अनपढ़ थी न...!

जब तुम रात को पढ़ते–पढ़ते सो जाते थे, तो वह आकर तुम्हारी कॉपी व किताब बस्ते में भरकर, फिर तुम्हारे शरीर पर ओढ़नी से ढँक देती थी और उसके बाद ही सोती थी...क्योंकि वह अनपढ़ थी ना...!

बचपन में तुम ज्यादातर समय बीमार रहते थे...तब वो रात–रात भर जागकर सुबह जल्दी उठती थी और काम पर लग जाती थी...क्योंकि वो अनपढ़ थी न...!

तुम्हें ब्रांडेड कपड़े लाने के लिये मेरे पीछे पड़ती थी, और खुद सालों ते एक ही साड़ी में रहती थी। क्योंकि वो अनपढ़ थी न...!

बेटा...पढ़े–लिखे लोग पहले अपना स्वार्थ और मतलब देखते हैं...लेकिन तेरी माँ ने आज तक कभी नहीं देखा। क्योंकि अनपढ़ है ना वो...!

वो खाना बनाकर और हमें परोसकर, कभी–कभी खुद खाना भूल जाती थी...इसलिए मैं गर्व से कहता हूं कि तुम्हारी माँ अनपढ़ है...

यह सब सुनकर लड़का रोते रोते, और लिपटकर अपनी माँ से बोलता है...''माँ, मुझे तो कागज पर 90 प्रतिशत अंक ही मिले हैं। लेकिन आप मेरे जीवन को 100 प्रतिशत बनाने वाली पहली शिक्षक हैं।

माँ, मुझे आज 90 प्रतिशत अंक मिले हैं, फिर भी मैं अशिक्षित हूँ और आपके पास पीएचडी के ऊपर की उच्च डिग्री है। क्योंकि आज मैंने अपनी माँ के अंदर छुपे रूप में, डॉक्टर, शिक्षक, वकील, ड्रेस डिजाइनर, बेस्ट कुक, इन सभी के दर्शन कर लिये !

'ज्ञानबोध'.....प्रत्येक लड़का–लड़की जो अपने माता–पिता का अपमान करते हैं, उन्हें अपमानित करते हैं, छोटे–मोटे कारणों के लिए क्रोधित होते हैं। उन्हें सोचना चाहिए, उनके लिए क्या–क्या कष्ट सहा है, उसके माता पिता ने...

सदैव प्रसन्न रहिये, जो प्राप्त है, पर्याप्त है

**– प्रकाश हिन्दी कहानियाँ से साभार**

# नवनीत अहंकार व संस्कार

.... स्वामी विवेकानंद परिव्राजक,

सामान्य रूप से थोड़ा बहुत अभिमान तो प्रायः सभी में होता है। ''यदि यह अभिमान, स्वाभिमान की सीमा तक रहे, तो इसमें कोई हानि नहीं है।'' ''परंतु यदि यह अभिमान, यदि सीमा का अतिक्रमण करके दुरभिमान का रूप धारण कर ले, तो वह हानिकारक एवं दुखदायक अवश्य होता हैं।''

स्वाभिमान का अर्थ है, ''ईश्वर माता पिता और गुरूजनों आदि की कृपा से, समाज के सहयोग से अपको वास्तव में जितने गुण प्राप्त हुए है, उन गुणों को ध्यान में रखते हुए, समाज के लोगों से उतने ही धन सम्मान की आशा रखना, यह स्वाभिमान कहलाता है। ''ऐसा करना वेदों के अनुकूल होने से उचित है। ''इसलिए प्रत्येक व्यक्ति को स्वाभिमानपूर्वक जीवन को जीना चाहिए। किसी भी स्थिति में स्वाभिमान को खो देना अच्छा नहीं है।''

''और ईश्वर की कृपा आदि उक्त कारणों से जितने गुण आपको वास्तव में प्राप्त हुए हैं, अपने गुणों को उनसे अधिक मानना, और अपनी वास्तविक योग्यता से भी अधिक धन सम्मान आदि की इच्छा करना, तथा दूसरों पर अन्याय करना, यह दुरभिमान कहलाता है।'' यह हानिकारक है। ''इसके कारण संसार के लोग दूसरों पर अन्याय अत्याचार करते हैं, जिससे सबका दुख बढ़ता है। ऐसा नहीं करना चाहिए।''

इसी दुरभिमान को 'अंहकार' नाम से भी कहा जाता है। ''जब व्यक्ति अंहकार की स्थिति में होता है, तब वह दूसरों पर अनुचित दबाव डालकर उन्हें परेशान करता है। उन्हें अपने सामने झुकने को मजबूर करता है। ऐसा करने से उसको खुशी मिलती है। यह खुशी अन्यायपूर्वक होने के कारण अच्छी नहीं है। यह वास्तविक खुशी नहीं है।''

वास्वतिक खुशी तो संस्कार की स्थिति में मिलती है। अर्थात ''जिस व्यक्ति के पूर्व जन्मों के संस्कार भी अच्छे हैं, वर्तमान जन्म में माता–पिता एवं गुरूजनों से भी उसको बहुत अच्छी बातें सीखने को मिली हैं, और वह न्यायपूर्वक ही सबके साथ उचित व्यवहार करता है। सभ्यता नम्रता सेवा परोपकार दान दया आदि गुणों को धारण करके दूसरों के सामने सदा झुककर रहता है। इससे उसे भी और दूसरों को भी, सबको सुख मिलता है। यह संस्कार की स्थिति है। यह स्थिति अच्छी है।''

''परंतु यहां यह ध्यान अवश्य रखें, कि सदा नम्रतापूर्वक झुककर रहने का अर्थ 'स्वाभिमान को खो देना' नहीं है।'' बल्कि अपने स्वाभिमान को बनाए रखते हुए नम्रतापूर्वक जीवन जीने को ही संसार की स्थिति कहते हैं।'' इस प्रकार से सबको जीवन जीना चाहिए, और स्वयं आनन्दित होकर, दूसरों को भी आनंदित करना चाहिए। इसी में जीवन की सफलता और बुद्धिमत्ता है।''

*निदेशक– दर्शन योग महाविद्यालय, रोजड़, गुजरात*

## *योग सुविचार*

*पवित्र **'ओ३म्'** का जप करने तथा मोक्ष का उपदेश करने वाले शास्त्रों को पढ़कर मन के विचारों का निरोध करें और मन के विचारों के निरोध के सहयोग से **'ओ३म्'** के जप का अभ्यास करें। इस स्वाध्याय और योग की सिद्धि से अन्तरात्मा में परमात्मा का प्रकाश हो जाता है।*

हस्ताक्षर

# धर्मवीर पंडित लेखराम

डॉ. भवानीलाल भारतीय

**ऋषियों, महात्माओं तथा महापुरूषों की पवित्र जीविनयों का अवलोकन करने से भलीभांति विदित होता है कि उनका जीवन सफल था। सफल जीवन के लिए जिन उत्तम साधनों की परमावश्यकता प्रतीत होती है वह सब पूर्ण रूपेण उनक जीवन में सम्वक्तया उपलब्ध होते हैं।**

वैदिक धर्म के प्रति अनन्य निष्ठा रखकर धर्म प्रचार, लेखन, शास्त्रार्थ, शुद्धि तथा विविध कार्यों में जीवन समर्पित कर देने वाले पं लेखराम जैसे धर्मवीर, आर्य जाति के इतिहास में बहुत कम देखने में आते हैं। इनका जन्म 1915 विक्रमी में जेहलम जिले के एक ग्राम सय्यदपुर में महता तारासिंह नामक ब्राह्मण के यहां हुआ। बाल्यकाल में उनका अध्ययन फारसी तथा उर्दू के माध्यम से हुआ। यही भाषाएँ उन दिनों पंजाब में पढ़ाई जाती थीं। सामान्य शिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् वे सत्रह वर्ष की आयु में पुलिस में भर्ती हो गए। इस विभाग में उन्नति करते–करते वे सार्जेंट के पद तक पहुंच गए। इन्हीं दिनों इनका झुकाव धर्म एवं अध्यात्म की ओर हुआ। वे गीता का नियमित पाठ करते तथा अद्वैतवाद की दार्शनिक विचारधारा का लगातार चिन्तन करते। उन्हें पंजाब के प्रसिद्ध क्रांतिकारी विचारक मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी के ग्रन्थों को पढ़ने का भी अवसर मिला। फलतः उनके विचारों में परिवर्तन आया। अब वे ऋषि दयानन्द की विचारधारा से परिचित हुए। 1937 वि. में पेशावर में उन्होंने आर्यसमाज की स्थापना की थी। अब उन्हें वैदिक धर्म के विषय में अधिक जानने की इच्छा हुई एक मास का अवकाश लेकर वे ऋषि दयानन्द से भेंट करने के लिए अज़मेर जा पहुंचे। उन्होंने स्वामी जी के चरणों में सिर नवाया और अनेक जिज्ञासाएँ प्रस्तुत की। जब स्वामी जी महाराज ने इस युवक के सभी प्रश्नों का सम्मानजनक उत्तर दे दिया, तब पं. लेखराम संतुष्ट मन से स्वस्थान पर लौट आए। स्वामी जी ने इस समय उनसे यह भी प्रतिज्ञा कराई कि पच्चीस वर्ष से पूर्व वे हरगिज विवाह नहीं करेंगे। पं. लेखराम ने गुरूवार के इस आदेश को निभाया। पं. लेखराम अब सर्वात्मना धर्मप्रचार में जुट गए। उन्होंने धर्मोपदेश नामक एक उर्दू मासिक निकाला। उसमें उच्च कोटि के लेख लिखने लगे। उन दिनों पंजाब में मुसलमानों के एक नये फिर्के अहमदिया सम्प्रदाय (कादियानी) का जोर था। इसके संस्थापक मिर्जा गुलाम अहमद स्वयं को पैगम्बर बताने लगे थे। उनके अनुयायियों की संख्या भी बढ़ रही थी। यद्यपि पं.लेखराम पुलिस सेवा में रहते हुए भी धर्मप्रचार के लिए पर्याप्त समय देते थे, किन्तु 1940 वि. में स्वामी दयानन्द के निधन के पश्चात् उन्होंने अनुभव किया कि अब सरकारी नौकरी और धर्मप्रचार दानों साथ साथ नहीं चल सकते। अतः उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और धर्मोपदेश को ही अपने जीवन का एकमेव लक्ष्य बनाया।

पं. लेखराम ने अहमदिया सम्प्रदाय और उसके स्वयंभू पैगम्बर को आलोचना का लक्ष्य बनाया। सम्प्रदाय की मान्यताओं के खण्डन में उन्होंने अनेक ग्रन्थ निकाले। **'तकजीब बुराहीन अहमदिया'** और **'नुस्खा खब्त अहमदिया'** आदि पुस्तक अत्यन्त लोकप्रिय हुई मुसलमानों ने भी कादियानियों की मिथ्या बातों तथा कपोल कल्पनाओं को समझना आरम्भ किया।

जब आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का विधिवत गठन हुआ तो पं. लेखराम उसके उपदेशक बन गए। सभी की ओर से विभिन्न स्थानों पर प्रचारार्थ जाने

लगे। उनकी प्रवृतियां बहुआयामी थीं। उन्होंने **'आर्यजगत'** का सम्पादन किया। विधर्मियों से शास्त्रार्थ किये, हिन्दू धर्म को छोड़कर या इस्लाम ग्रहण करने वालों को स्वधर्म में रहने के लिए मनाया। जहां जहां से उन्हें प्रचारार्थ बुलाया गया, वहां वहां जाकर उन्होंने लोगों को वैदिक धर्म के तत्वों को समझाया।

इनके अतिरिक्त पं. लेखराम सुयोग्य लेखक भी थे। उन्होंने भारतीय इतिहास, ईसाई तथा इस्लाम धर्म के मूल तत्वों तथा मान्यताओं का विशद अध्ययन किया था, सैमेटिक मतों के मान्य ग्रन्थों का गम्भीर अनुशीलन किया था। इन मतों के वे अधिकृत विद्वान् समझे जाते थे। इसी बीच आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने एक प्रस्ताव स्वीकार कर, ऋषि दयानन्द का विस्तृत एवं प्रामाणिक जीवन चरित्र लिखवाने का निश्चय किया। इस कार्य को आरंभ करने के पूर्व यह आवश्यक कि ऋषि जीवन विषयक सभी तथ्यों एवं जानकारियों को एकत्र किया जाता। यह गुरूवर कार्य पं. लेखराम के ही सुपुर्द किया गया। सभा के आदेश को शिरोधार्य कर पं. लेखराम जी स्वामी दयानन्द के जीवन से संबंधित सामग्री का संकलन करने के लिए देश के विभिन्न भागों में गए। प्रत्यक्षदर्शियों से मिलकर, आवश्यक सूचनाएँ एकत्र करने के अतिरिक्त उन्होंने हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि पत्रों में प्रकाशित ऋषि दयानन्द सम्बन्धी संदर्भ सूचनाओं तथा लेखों को भी एकत्र किया।

इस बहुत संग्रह कार्य को पूरा करने के पश्चात् वे लाहौर आए और जीवनी लेखन का कार्य आरम्भ किया। यह दुर्भाग्य ही था कि असमय में बलिदान मार्ग को पाथिक बन जाने के कारण, पं. लेखराम की लौह लेखनी से, आचार्यप्रवर का वह विशद जीवनचरित नहीं लिखा जा सका। कालान्तर में पंजाब सभा के प्रधान लाला मुन्शीराम के आदेश से पं. आत्माराम अमृतसरी ने पं. लेखराम द्वारा संगृहीत सामग्री के आधार पर ही इस वृहद् ग्रन्थ को उर्दू में लिखकर पूरा किया।

1950 विक्रमी में जब उनकी आयु 35 वर्ष की थी, उन्होंने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया और कुमारी लक्ष्मी को अपनी सहधर्मिणी बनाया। उनके एक पुत्र हुआ जो अधिक आयु नहीं पा सका। पं. लेखराम की यह विशेषता थी कि जहां और जिस समय उनकी परिस्थिति की आवश्यकता महसूस की जाती वे अन्य सभी कामों को छोड़कर वहां पहुंच जाते। ऐसा करते समय उन्हें न तो निजी सुविधाओं की ही चिन्ता रहती, न वे यात्रा की कठिनाइयों की ही ख्याल करते। जब उन्हें ज्ञात हुआ कि जोधपुर के प्रशासक महाराजा प्रतापसिंह, स्वामी दयानन्द के आद्य शिष्य पं. भीमसेन शर्मा को अपने यहां बुलाकर मांस भक्षण के समर्थन में उनसे कोई व्यवस्था लिखवाना चाहते हैं, तब पं. लेखराम अविलम्ब जोधपुर पहुंचे। उन्होंने पं. भीमसेन को स्पष्ट कह दिया कि यदि उसने लोभ या दबाव में आकर मांस के समर्थन में कोई व्यवस्था दे दी, उसे आर्यसमाज की वैदी पर खड़े होने से भी वंचित कर दिया जाएगा और उसकी प्रतिष्ठा धूल में मिल जायेगी।

बूंदी में जब आर्यसमाज के प्रसिद्ध संन्यासी स्वामी नित्यानन्द और स्वामी विश्वेश्वरानन्द का पौराणिक विद्वानों से शास्त्रार्थ होने लगा, तब उनकी सहायता के लिए पण्डितजी को भेजा गया। इस अवसर पर उन्होंने भीलवाड़ा जिले के जहाजपुर कस्बे में, मुहम्मदी मत की आलोचना में एक तर्कपूर्ण व्याख्यान किया। साधु केशवानन्द नामक एक पौराणिक साधु से शास्त्रार्थ क रने के लिए वे हिमाचल प्रदेश के नाहन नगर में गए और वहां पर आर्यसमाज की स्थापना की।

स्वधर्म को त्यागकर, किसी अन्य मत की दीक्षा लेने के लिए तत्पर लोगों को बचाने के लिए पं. लेखराम सदा सज़ग रहते थे। जब उन्हें पता चला कि पटियाला रियासत के एक गांव पायल में कोई हिन्दू अपना मत त्यागकर अन्य मत में दीक्षित हो रहा है, तो वे बिना इस बात का विचार किये कि अमुक रेलगाड़ी उस स्टेशन (बाबा पायल) पर ठहरती भी है या नहीं, द्रुतगति रेल में सवार हो गए। जब गाड़ी पायल स्टेशन होकर गुजरने लगी तो लेखराम ने अपना बिस्तर चलती गाड़ी से बाहर फेंका और स्वयं कूद गए। उन्हें इस बात की थोड़ी भी चिन्ता नहीं हुई कि उनके शरीर को क्षति पहुंची है। वे तुरन्त स्वधर्म त्याग के लिए तत्पर उस व्यक्ति के निकट पहुंच गए और उससे पूछने लगे कि उसने क्या सोचकर धर्म परिवर्तन का निश्चय किया

है? जब उक्त व्यक्ति को पता चला कि पं. लेखराम तो अपने शरीर पर चोटों को झेलकर केवल उसे बचाने के लिए ही आए हैं, तब उसने परमत–प्रवेश का अपना संकल्प त्याग दिया। पं. लेखराम जितने उत्तम वक्ता उपदेशक और शास्त्रार्थकर्त्ता थे उसकी भांति उच्च कोटि के लेखक भी थे। उनके द्वारा रचित ग्रन्थों की संख्या 33 है, जो कुलियात आर्य मुसाफिर नामक वृहद ग्रन्थ में संग्रहित है। इनके एकाधिक अनुवाद हिन्दी में भी हुए हैं। जब 1897 के वर्ष में पं. लेखराम लाहौर में अपने निवास में रहकर दयानन्द जीवन लेखन का कार्य कर रहे थे, उनके प्राणहरण की चेष्टा सफल हुई। जब वे दिन भर के लेखन कार्य से थककर अंगड़ाई लेते हुए उठे, तो एक काले गठीले तथा हिंसक प्रवृति के पुरूष ने उनकी छाती तथा पेट में छुरे से घातक प्रहार किये। इस आकस्मिक प्रहार से पं. लेखराम के शरीर से खून की धाराएं बह निकली, अंतड़ियां भी बाहर आ गई। उन्हें तुरन्त अस्पताल पहुंचाया गया। जीवन के इन अंतिम क्षणों में भी ईश्वर विश्वासी लेखराम परमपिता का निरन्तर स्मरण करते रहे। उस समय आर्यसमाज के मूर्घन्य नेता लाला मुन्शीराम भी उनकी मृत्यु शैया के निकट उपस्थित थे।

इस समय अमर हुतात्मा श्री लेखराम ने आर्यजाति को अपना अन्तिम संदेश देते हुए कहा कि आर्यसमाज में तहरीर (लेखन) तथा तकरीर (व्याख्यान) का काम कभी बंद नहीं होना चाहिए। मर्म स्थलों पर लगे प्रहारों ने उनके जीवन की आशा को समाप्त कर दिया। 6 मार्च 1897 की रात्रि को इस अमर धर्मवीर का धर्म की वेदी पर बलिदान हो गया। धर्म और सत्य के लिए स्वयं को होम देने वाले पं. लेखराम जैसे सर्वस्य स्वामी पुरूष ही मानवता के प्रकाश स्तम्भ है।

*पता : 3/5, शंकर कालोनी, श्रीगंगानगर*

# स्वामी दयानन्द सरस्वती जी की 200वीं जयंती पर

दयानन्द स्वामी ने जो पथ दिखलाया।
उसी पथ पे चलकर हमें सुख आय़ा।
विचारों की परतन्त्रता यहां बनी थी।
जहां देखो वहां पर अविद्या घनी थी।
स्वामी ने वेदों से परिचय कराया॥
नारी नरक का द्वार थी कहाती।
बाल विधवा यहां रोज करहाती।
नारी की शिक्षा को अमूल्य बताया॥
अछूत, अनाथों का ना कोई रखवाला।
भयंकर थी पीड़ा, छिना था निवाला।
दया करके स्वामी ने गले से लगाया॥

मत, पंथ, संप्रदायों की चक्की में।
पिस रही थी जनता, पाट पक्की में।
चक्कर से चक्की से हमको बचाया॥
कच्ची उमर में होता विवाह था।
शूरता व धीरता को खोता जवां था।
तोड़कर के रीत इससे मुक्त कराया॥
विदेशियों के बन्धन में माता पड़ी थी।

खात थे ठोकरें ये विपदा बड़ी थी।
बजाकर बिगुल क्रांति का जगाया॥
शिक्षा विदेशी हम पढ़ते थे।
दासता की लंबी गढ़ते थे।
बंद द्वार गुरुकुल का फिर खुलवाया॥
पंडों पुजारियों की तूती बोलती थी।
छली जाती जनता ना आंख खोलती थी।
भंवर में फंसे उन लोगों को बचाया॥
निराकार ईश्वर की प्रतिमा बनाकर।
पूजते रहे हम बुद्धि को गंवाकर।
ज्ञान कर्म शुद्ध करके ध्यान है सिखाया॥
आलस्य निद्रा गहन बन गई थी।
अविद्या से गागर सबकी भर गई थी।
विद्या के सागर में गोता लगवाया॥
उठो आर्यवीरों निद्रा को त्यागो।
मिटाकर तमस को उत्साह से लगाओ।
मिलकर पुनः आर्यावर्त्त बनाया॥

# बोधकथा माया की गठरी

मैंने सुना है कि किसी गांव में एक फकीर घूमा करता था। उसकी सफेद लंबी दाढ़ी थी और हाथ में एक मोटा डंडा। चीथड़ों में लिपटा उसका ढीला–ढीला और झुरियों से भरा बुढ़ापे का शरीर। अपने साथ एक गठरी लिए रहता था सदा। और गठरी पर बड़े–बड़े अक्षरों में लिखा रखा था : **'माया'**। वह बार–बार उस गठरी को खोलता भी था। उसमें उसने बड़े जतन से रंगीन रही कागज लपेट कर रखे छोड़ थे। कहीं मिल जाते रास्ते पर जाता कागजों को इकट्ठा कर लेता। अपनी माया की गठरी में रख लेता। जिस गली से निकलता उसमें रंगीन कागज दिखता तो बड़ी सावधानी से उठा लेता। सिकुड़नों पर हाथ फेरता, उनकी गड्डी बनाकर, जैसे नोटों की गड्डी बनता है, अपनी माया की गठरी में रख लेता। उसकी गठरी रोज बड़ी होती जाती थी। लोग उसे समझते कि पागल, यह कचरा क्यों ढोता है? वह हंसता और कहता है कि जो खुद पागल है व दूसरों को पागल बता रहे हैं। कभी–कभी किसी दरवाजे पर बैठ जाता और कागजों को दिखा कर कहता, ये मेरे प्राण हैं। ये खो जाएं तो मैं एक क्षण जीन सकूंगा। ये खो जाएं तो मेरा दिवाला निकल जाएगा। ये चोरी चले जाएं तो मैं आत्महत्या कर लूंगा। कभी कहता ये मेरे रूपये हैं, यह मेरा धन है। इनसे मैं अपने गांव के गिरते हुए किले का पुनः निर्माण कराऊंगा। कभी अपनी सफेद दाढ़ी पर हाथ फेर कर स्वाभिमान से कहता, उस किले पर हमारा झंडा फहराएगा और मैं राजा बनूंगा। और कभी कहता कि इनको नोट ही मत समझो, इनकी ही मैं नावें बनाऊंगा। इन्हीं नावों में बैठ कर उस पार जाऊंगा। और लोग हंसते। और बच्चे हंसते औरते भी हंसती। और जब भी कोई जोर से हंसता तो वह कहता, चुप रहो। पागल हो और दूसरों को पागल समझते हो। तभी गांव में एक ज्ञानी का आगमन हुआ। और उस ज्ञानी ने गांव के लोगों से कहा, इसको पागल मत समझो और इसकी हंसी मत उड़ाओं। इसकी पूजा करो नासमझों ! क्योंकि यह जो गठरी ढो रहा है, तुम्हारे लिए ढो रहा है। ऐसे ही कागज की गठरियां तुम ढो रहे हो।

यह तुम्हारी मूढ़ता को प्रकट करने के लिए इतना श्रम उठा रहा है। इसकी गठरी पर इसने 'माया' लिख रख छोड़ा है। कागज, कूड़ा–कचरा भरा है। तुम क्या लिए घूम रहे हो? तुम भी सोचते हो कि महल बनाएंगे, उस पर झंडा फहराएंगे, उस पार जाएंगे। सिकंदर बनेंगे कि नेपोलियन। सारे संसार को जीत लेंगे। बड़े किले बनाएंगे कि मौत भी प्रवेश न कर सकेगी। और जब यह फकीर समझाने लगा लोगों को तो वह भिखमंगा हंसने लगा और उसने कहा कि मत समझाओ। ये खाक समझेंगे। ये कुछ भी न समझेंगे। मैं वर्षों से समझाने की कोशिश कर रहा हूं। ये सुनते नहीं। ये मेरी गठरी देखते हैं, अपनी गठरी नहीं देखते। ये मेरे रंगीन कागजों को रंगीन कागज समझते हैं, और जिन नोटों को इन्होंने तिजोरियों में भर रखा है उन्हें असली धन समझते हैं। मुझे कहते हैं पागल, खुद पागल है। यह पृथ्वी बड़ा पागलखाना है। इसमें से जागो। इसमें से जागो, इसमें से न जागे तो बार–बार मौत आएगी और बार–बार तुम वापस इसी पागलखाने में फेंक दिए जाओगे। फिर–फिर जन्म ! इसलिए तो पूरब के मनीषी एक ही चिंता करते रहे हैं सदियों से आवागमन से कैसे छूटकारा हो? कैसे मिटे जन्म? कैसे मिटे मौत? मिटने का एक ही उपाय है। तुम्हारे भीतर कुछ ऐसा है जिसका न कभी जन्म हुआ और न कभी मृत्यु होती है। तुम्हारे भीतर अजन्मा और अमृतस्वरूप कुछ पड़ा है। वही तुम्हारा हीरा है, उसे खोज लो। वही तुम्हारा धन।

**महापुरूष वचनामृत**

**आरोग्य**

# अबटु विकार (थायराइड)

– आचार्य डॉ.
वेदव्रत आर्य

**थायराइड ग्लैण्ड :** जिसे आयुर्वेद में "अबटु" ग्रन्थि कहते हैं। गले में स्वरतन्त्र और श्वासनली के मध्य में स्थित होती है। इस ग्रन्थि से थायरोक्सिन नामक हार्मोन का स्राव होता है, जो कि रक्त में मिलकर चयापचप (मेटाबोलिज्म और केटाबोलिज्म) को नियन्त्रित करता है। यह स्राव जब सामान्य से कम मात्रा में होता है तो उसे हाइपोथायराइडिज्म या अबटु अल्पसक्रियता और जब अधिक मात्रा में स्राव होता है तो हाथ पर थायरोइडिज्म या अबटु अति सक्रियता कहते हैं। इस तरह इस व्याधि को दो श्रेणियों में रखा जाता है।

सामान्य स्थिति में जब स्राव अल्प या अति मात्रा में नहीं होता तब इसे स्राव या कहें कि ग्रन्थि के कार्य का प्रभाव सिर के बाल से लेकर पैर के नाखूनों तक शरीर के अन्तः-बाह्य सभी अंगों पर सकारात्मक होता है, मुख्यतः (1) सीरम कोलेस्ट्रॉल नियन्त्रित रहता है। (2) शारीरिक-मानसिक एलं लैंगिक विकास सन्तुलित रुप से होता है। (3) शरीरस्थ समस्त कोशिकाओं को ऑक्सीजन (प्राण वायु) उचित मात्रा में प्राप्त होती है। (4) लिवर और हृदय की मांसपेशियों की कार्यक्षमता में सहायता मिलती है। (5) प्रोटीन और वसा को ग्लूकोज में परिवर्तन करने में सहायता मिलती है। (6) ग्लूकोज को आंतों में अवशोषण करने में सहायता मिलती है। (7) रक्तचाप (ब्लड प्रेशर) सामान्य रहता है।

**हाइपोथायरॉइडिज्म :-** आयुर्वेदानुसार हार्मोन एक प्रकार की धात्वग्नि है जो कि जठराग्नि की तीव्रता या मन्दता से तीव्र या मन्द होती है। अतः यह व्याधि धात्वग्नि मन्दता अन्य व्याधि है। धात्वग्नि की मन्दता से इस ग्रन्थि से थायरोक्सीन के स्राव में कमी आ जाती है। कई बार नवजात शिशुओं में भी यह समस्या देखी जाती है, प्रारम्भ में व्याधिग्रस्त शिशु का विकास सामान्य रहता है परन्तु 6 माह के पश्चात् लक्षण प्रकट होने लगते हैं। शिशुओं में यह व्याधि माता को मैक्सीडिया नामक रोग होने पर गर्भावस्था के शारीरिक व मानसिक समस्यात्मक लक्षण उत्पन्न होते हैं। इन लक्षणों को क्रीटिनिज्म कहते हैं। शिशुकाल से ही इस व्याधि से ग्रस्त होने पर शारीरिक विकास अवरुद्ध होकर बौनेपन की स्थिति बन जाती है, मानसिक रुप से भी दुर्बलता रहती है।

**इसके सामान्य लक्षणों में** – थकावट, आलस्य, हाथ पैर की क्रियाशीलता में कमी, स्मृति दौर्बल्य, बालों में रुक्षता, भौहों में बाल कम होना, सिर के बालों का झड़ना, चेहरे में सूजन, त्वचा में रुक्षता, सर्दी या शीतलता के प्रति असहिष्णुता, शरीर में स्थूलता और भार में वृद्धि, महिलाओं में मासिक स्राव अधिक होना, कब्जियत होना, नाड़ी की गित धीमी होना, नाखूनों का पतला होना, महिलाओं में बीज ग्रन्थि का विकास न होना, पुरुषों में यौन क्षमता में कमी होना, मांसपेशियों में शक्तिहीनता रक्ताव्यता,

बुद्धिहीनता आदि लक्षण देखने में आते हैं। सभी व्याधियों में सभी लक्षण होना आवश्यक नहीं, परन्तु कुछ न कुछ लक्षण तो मिलते ही हैं।

निदानात्मक लक्षणों में जीभ लम्बी होकर बाहर दिखाई देना, नासिकावक्रता, आध्मान और रक्तशंर्करा की अल्पता (Low Blood Sugar) होती है।

**चिकित्सा** – आरोग्यवर्धनी बटी, बुद्धिवाटिका बटी, चित्रकादि बटी, मेदोहर गुग्गुल, त्रिफला गुगुल, काचनार गुग्गुल, श्वासकुठार रस, श्रृंगभस्म गण्डमालाकण्डन रस, रसमाणिक्य रस, पुनर्नवादि मण्डूर, शिलासिन्दूर, शिलाजीत, त्रिफला चूर्ण, गोमूत्र, विडंगादि लौह, कुमारकीसव, घृतकुमारी रस, मूलीक्षार आदि औषधियों का प्रयोग चिकित्सक के निर्देशानुसार करने पर शत–प्रतिशत लाभ होता है।

**घरेलू चिकित्सा :** गुड़ के साथ अदरक की 1–1 ग्राम की गोली बनाकर प्रतिदिन निराहार 10 दिन तक वर्धमान क्रम से लेकर पुनः 10 दिन अवरोह क्रम से गुनगुने जल से लेने पर लाभ होता है। इसी प्रकार गुड़ के साथ हरीतकी चूर्ण 1–1 ग्राम परिमाण की गोली बनाकर वर्धमान क्रम से लेने पर भी लाभ होता है।

**चिकित्सा अवधि :** औषधि चाहे कोई भी हो जब तक रोग पूरी तरह ठीक न हो जाय लेनी चाहिए कम से कम 2 वर्ष तो लेनी ही पडती है। ऐलोपैथी में आजीवन लेनी पड़ती है।

**पथ्य :–** मूंग, मोंठ, साठी चावल, मूंगदाल वाली खिचड़ी, मूंग पापड़, अंजीर, डंठलयुक्त पान (ताम्बूल), कोमल मूली, सिंघाड़ा, आंवला, अदरक, गुड़, सेन्धा नमक इस व्याधियों में औषधीय कार्य करते हैं।

**अपथ्य :–** चिरपाकी (देर से पकने वाले पदार्थ), घी, तेल, मांसाहार सभी प्रकार की दालें (मूंग को छोड़कर)।

***पता : वेद मन्दिर, सोंठी (सक्ती), जि–सक्ती (छ.ग.)***

स्व. नंदकिशोर आर्य द्वारा रचित

# "वो फिर नहीं आते"

*जिंदगी के सफर में, क्षण व्यतीत होते जाते,*
*चाहे जो करो, वो फ़िर नहीं आते।*
*उनमें में किये कर्म, भूत बनते जाते,*
*लेख उनके, मिटाए मिट नहीं जाते॥*

*किये कर्मों के प्रभाव परिणाम,*
*चाहें जितना रख पाएं गुमनाम।*
*ईश्वर से रह नहीं पाते अनजान,*
*उनसे प्रभावित होते सब काम॥*

*बनते–संवरते टूटते–बिखरते जहान में,*
*होते हैं जो नींव, नहीं आते सबके ध्यान में।*
*सरलता या चतुराई से, लगे रहते व काम में,*
*क्या लगाएगा कोई कीमत उनकी दाम में॥*

*कोई बात नहीं, पर बात तो है होती,*
*चलती बातों में भी, कोई बात नहीं होती।*
*बातों ही बातों में, बातें बनाते जाते,*
*बातों के अवसर निकलने पर, वे फिर नहीं आते॥*

*मृदु हृदय में दिलाता, संबंधों में सफलता,*
*दुनियां स्वार्थी है पर, किसे है उसकी चिंता।*
*मसला जाता है वह, पैरों से आते जाते,*
*हृदय ऐसे फिर, संभाले संभल नहीं पाते॥*

*किये जाते हैं, प्रयास बढ़ चढ़ कर,*
*कराया जाता है यत्न, लाभ दिखा कर।*
*बनते विविध संयोगों में, जो उपलब्धि पाते,*
*हाथ से निकाल देने पर, वो अवसर फिर नहीं आते॥*

*जीवन में बहुत लोग आते जाते,*
*बिदकते तुनकते, हंसते हंसाते।*
*पर सच्चे हृदय जो कुचले जाते,*
*कुछ भी करो, वो मिलने नहीं आते॥*

सत्यजित

# व्याधि निदान कुष्ठ रोगियों के लिए होमियोपैथी चिकित्सा एक वरदान

– डॉ. विद्याकान्त त्रिवेदी
(होम्योपैथिक चिकित्सक)
मोबा. 7000236213, 9525515336

कोढ़ या कुष्ठ रोग (लिप्रोसी) या हन्सेन रोग एक जीर्ण रोग हैं। जो माइकोबैक्टिरियम लेप्राई नामक जीवाणु (बैक्टिरिया) के कारण होता है। यह मुख्य रूप से मानव, त्वचा, ऊपरी श्वसन पथ की श्लेष्मिका, परिधीय तंत्रिकाओं, आंखों और शरीर के कुछ अन्य क्षेत्रों को प्रभावित करता है। यह न तो वंशागत है और न ही दैवीय प्रकोप बल्कि यह एक रोगाणु से होता है। सामान्यतः त्वचा पर पाये जाने वाले पीछे या ताम्र रंग के धब्बे जो सुन्न हों या रंग तथा गठन में परिवर्तन दिखाई दे, तो यह कुष्ठ रोग के लक्षण हो सकते हैं। यह रोग छूत से नहीं फैलता। कुष्ठ की गणना संसार के प्राचीनतम ज्ञात रोगों में की जाती है। इसका उल्लेख चरक और सुश्रुत ने अपने ग्रंथों में किया है। उत्तर साइबेरिया को छोड़कर संसार का कोई भाग ऐसा नहीं था जहां यह रोग न रहा हो। किन्तु अब ठंडे जलवायु वाले प्रायः सभी देशों में इस रोग का उन्मूलन किया जा चुका है। अब यह अधिकांशतः कर्क रेखा से लगे गर्म देश के उत्तरी और दक्षिणी पट्टी में ही सीमित है और उत्तरी भाग की अपेक्षा दक्षिणी भाग में अधिक है। भारत, अफ्रीका और दक्षिणी अमेरीका में यह रोग अधिक व्यापक है भारत में यह रोग उत्तर की अपेक्षा दक्षिण में अधिक है। उड़ीसा, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु और दक्षिण महाराष्ट्र में यह क्षेत्रीय रोग सरीखा है। उत्तर भारत में यह हिमाचल की तराई में ही अधिक देखने में आता है।

**विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में कुष्ठरोग**

यह रोग संक्रामक है। यह रोग सामान्यतः गंदगी में रहने वाले और समुचित भोजन के अभाव में ग्रस्त लोगों में ही होता है, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि स्वच्छ और समृद्धिपूर्ण जीवन बिताने वाले वकील, व्यापारी, अध्यापक आदि इस रोग से सर्वथा मुक्त हैं।

इस रोग का कारण माइक्राक बैक्टिरियम लेप्रो नामक जीवाणु (बैक्टिरिया) का त्वचा में प्रवेश समझा जाता है। इस प्रकार – कुष्ठ सामान्यतः तीन प्रकार का ही होता है।

**तंत्रिका कुष्ठ** :–इसमें शरीर के एक अथवा अनेक अवयवों की संवदेनशीलता समाप्त हो जाती है। सुई चुभोने पर भी मनुष्य किसी प्रकार का कोई कष्ट अनुभव नहीं करता।

**ग्रंथि कुष्ठ** :– इसमें शरीर के किसी भी भाग में त्वचा से भिन्न रंग के धब्बे यह चकते पड़ जाते हैं अथवा शरीर में गांठे निकल आती है।

**मिश्रित कुष्ठ** :–इसमें शरीर के अवयवों की संवेदनशीलता समाप्त होने के साथ–साथ त्वचा में चकते भी पड़ते हैं और गांठे भी निकलती है।

इस रोग का संक्रमण किसी रोगी पर कब और किस प्रकार हुआ, इसका निर्णय कर सकना संप्रति असंभव है। अन्य रोगों की तरह इसके संक्रमण का तत्काल विस्फोट नहीं करता। उसकी गति इतनी मंद होती है कि संक्रमण के दो से पांच वर्ष बाद ही रोग के लक्षण उभरते हैं और तब शरीर का कोई भाग संवदेनहीन हो जाता है अथवा त्वचा पर चकते निकलते है या कान के पास अथवा शरीर के किसी अन्य भाग में गांठ पड़ जाती है। इससे रोगी को तत्काल किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं होता। फलतः लोग इसकी ओर तत्काल ध्यान नहीं देते। रोग उभरने के बाद भी यह अत्यंत मंद गति से बढ़ता है और पूर्ण रूप से धारण करने में उसे चार–पांच बरस और लग जाते हैं। रोग के विकसित हो जाने के बाद भी रोगी सामान्यतः अपने को इस रोग से ग्रसित होने की कल्पना नहीं कर

पाता। वह इस अवस्था में आलस्य, थकान, कार्य करने की क्षमता में कमी, गर्मी और धूप बर्दाशत न हो सकने की ही शिकायत करता है। जब रोग और अधिक बढ़ता है तो धीरे–धीरे मांसमज्जा क्षय (ड्राइ अव्सार्वशन) होने लगता है। जब वह हड्डी तक पहुंच जाता है तो हड्डी भी गलने लगती है और वह गलित कुष्ठ का रूप धारण कर लेता है। कभी जब संवदेना शून्य स्थान में कोई चोट लग जाती है अथवा किसी प्रकार को कट जाता है तो मनुष्य उसका अनुभव नहीं कर पाता, इस प्रकार वह उपेक्षित रह जाता है। इस प्रकार अनजाने ही वह व्रण का रूप धारण कर लेता है जा कालांतर में गलित कुष्ठ में परिवर्तित हो जाता है।

**चिकित्सा :–** इस रोग में संबंध में लोगों में यह गलत धारणा है कि असाध्य है। गलित कुष्ठ की वीभत्सता से समाज इतना आक्रांत है कि लोग कुष्ठ के रोगी को घृणा की दृष्टि से देखते हैं और उसकी समुचित चिकित्सा नहीं की जाती और उसके साथ अमानवीय व्यवहार किया जाता है। वास्तविकता यह है कि कुष्ठ रोग से कहीं अधिक भयानक यक्ष्मा, हैजा और डिप्थीरिया है। यदि लक्षण प्रकट होते ही कुष्ठ रोग का उपचार आरंभ कर दिया जाए तो इस रोग से मुक्त होना निश्चित है।

मनुष्य स्वस्थ होकर अपना सारा कार्य पूर्ववत् कर सकता है। इस प्रकार कुष्ठ रोग होने के साथ–साथ एक सामाजिक समस्या भी है। उपेक्षित रोगी जीवन से निराश होकर प्रायः वाराणसी आदि तीर्थों एवं अन्य स्थानों पर चले जाते हैं जहां उन्हें रहने को स्थान और खाने को भोजन आसानी से मिल जाता है। वहां के भिक्षुक बनकर घूमते हैं। अतः चिकित्सा व्यवस्था के साथ–साथ यह भी आवश्यक है कि समाज में कुष्ठ रोगी के प्रति घृणा के भाव दूर हों।

**होमियोपैथी उपचार :–** होमियोपैथी चिकित्सा पद्धति पूरी तरह से लक्षण पर निर्भर करती है। रोग नया हो या पुराना उसके मूल लक्षणों को खोजकर चुनी हुई औषधि देने पर किसी भी प्रकार के रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है, चाहे वो कुष्ठ रोग ही क्यों न हो। कई रोगियों को होमियोपैथी चिकित्सा कराकर लाभ मिला है, एवं कई रोगियों का इलाज चल रहा है। कई रोगियों के प्रभावित अंगों में स्पर्श संवेदना वापस लाने में और घाव भरने में होमियोपैथिक दवा का चमत्कारिक लाभ मिला है।

**पथ्य :–** हरी सब्जियाँ, अखरोट, छाछ, गाजर आदि का सेवन करना चाहिए।

**अपथ्य :–** मसाले वाली चीजे, मांसाहार, अंडा, शराब, मिठाई, गरिष्ठ भोजन नहीं करना चाहिए।

*पता : भारत माता विद्यालय के सामने, टाटीबंध, रायपुर (छ.ग.)*

## अमृत वचन

**सेवासिंह वर्मा,** पूठ खूर्द

- *जो अपनी गलतियों से सीखता है औ.र दूसरे तरीके अपनाता है, वह सफल होता है । हर छोटा बदलाव बड़ी कामयाबी का हिस्सा होता है ।*
- *जीत निश्चित हो तो कायर भी लड़ सकते हैं। व्यवहार वे कहाते हैं जो हार निश्चित हो, फिर भी मैदान नहीं छोड़ते ।*
- *जब परिश्रम करने के बाद भी सपने पूरे नहीं होते तो रास्ते बदलिये, सिद्धान्त नहीं। क्योंकि पेड़ भी हमेशा पत्ते बदलता है, जड़ नहीं।*
- *तूफान में कभी ताश का घर नहीं बनता। रोने से कभी बिगड़ा भाग्य नहीं संवरता । दुनिया को जीतने का हौसला रखो। एक बार हारने से कोई फकीर नहीं बनता और एक बार जीतने से कोई सिकंदर नहीं बनता ।*
- *मुश्किलें दिल के इरादे आजमाती है,<br>स्वप्न के परदे निगाहों से हटाती है,<br>हौसला मत हार गिरकर ए मुसाफिर,<br>ठोकरें इंसान को चलना सिखाती है ॥*

समाचार प्रवाह

# डी.ए.वी. छाल में मना : बिदाई समारोह

**छाल । रायगढ़** – दिनांक 16 फरवरी 2023 को डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल एस.ई.सी.एल. छाल रायगढ़ के सुविस्तृत प्रांगण में कक्षा 12वीं में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं के लिये बिदाई समारोह का आयोजन किया गया। इस पावन अवसर पर प्राचार्य कृष्णदत्त शर्मा के सान्निध्य में विद्यालय के धर्माचार्य द्वय कर्मवीर शास्त्री एवं अमूल्य शास्त्री के संयुक्त आचार्यत्व में वृहदयज्ञ रखा गया, जिसमें चारों वेदों से चुने हुए विशिष्ट मंत्रों के द्वारा समस्त छात्र–छात्राओं ने बड़ी श्रद्धा एवं भक्ति के साथ पवित्र यज्ञाग्नि में आहुतियां प्रदान की। विद्यालय के सभी शिक्षक–शिक्षिकाओं ने भी यज्ञ कुण्ड पर आहुतियां देते हुए बच्चों के सुखद एवं सफल भविष्य के लिए मंगल कामनाएँ व्यक्त की।

पूर्णाहुति के पश्चात् प्राचार्य महोदय ने अपने आशीर्वचन के दौरान हृदयोद्गार प्रकट करते हुए आगामी परीक्षा में सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन के लिए अमल योग्य उपायों पर जोर डालते हुए बचे हुए समय का किस प्रकार सदुपयोग किया जा सकता है, इस पर अनेक उदाहरणों द्वारा उपयोगी विचारों को आत्मसात कराया, अपने आशीर्वचनों में आगे कहा कि किस प्रकार एक शिक्षित नागरिक परिवार एवं समाज के उत्थान में अपनी उपयोगिता साबित कर योगदान दे सकता है। शांतिपाठ के पहले गुरुजनों ने पुष्पवर्षा कर छात्र समूह को सफलता का स्नेहाशीष प्रदान किया। प्रसाद वितरण के साथ समारोह समाप्त हुआ।

*संवाददाता : कार्यालय, डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल, छाल*

जीवन तभी कष्टमय होता है, जब वस्तुओं की इच्छा करते हैं और मृत्यु तभी कष्टमयी होती है, जब जीने की इच्छा करते हैं।

# "अग्निदूत" के ग्राहक सदस्यों की सेवा में

छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा के मासिक मुख पत्र 'अग्निदूत' के समस्त ग्राहक सदस्यों से निवेदन है कि अपना वार्षिक शुल्क 100/– यथाशीघ्र सभा कार्यालय में भेज दें, जिससे कि उन्हें नियमित रुप से 'अग्निदूत' भेजा जाता रहे। जिन सदस्यों के शुल्क तीन वर्षों से अधिक बकाया हो, उनसे निवेदन है कि वे अपना दसवर्षीय शुल्क 800/– रु. भेजें। इस कार्य को यथाशीघ्र प्राथमिकता से करें। अन्यथा इस मास से 'अग्निदूत' भेजना बंद कर दिया जायेगा। पत्र व्यवहार में अपना सदस्य संख्या तथा पूरा पता पिन कोड सहित अवश्य लिखें। छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा का भारतीय स्टेट बैंक दुर्ग शाखा में सेविंग एकाउन्ट नं. 32914130515 आई.एफ.एस.सी. कोड **SBIN0009075** कोड नं. है। जिसमें आप बैंक की शाखा से आनलाईन शुल्क जमा कर सभा कार्यालय के दूरभाष नं. 0788–4031215 द्वारा सूचित करते हुए अलग से पत्र लिखकर अवगत करा सकते हैं। 'अग्निदूत' मासिक पत्रिका के सम्बन्ध में कोई भी शिकायत हो तो कृपया श्रीनारायण कौशिक को चलभाष नं. 9770368613 में सम्पर्क कर सकते हैं।

**कार्यालय पता :– 'अग्निदूत', दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग (छ.ग,) 491001 फोन : 0788–4031215**

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल एस.ई.सी.एल. छाल रायगढ़ में कक्षा बारहवीं के छात्र-छात्राओं की बिदाई समारोह में आयोजित वृहद्यज्ञ की झलकियाँ

CHH-HIN/2006/17407

मार्च 2023

डाक पंजी.छ.ग./दुर्ग संभाग/99/2021-23

प्रेषक :
''अग्निदूत'' हिन्दी मासिक पत्रिका,
कार्यालय-छ.ग. प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा
दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग (छ.ग.) 491001

अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लायसेंस नं. : TECH/1-170/CORR/CH-4/2019-20-21

# नव वर्षाभिनन्दनम्

चैत्रे मासि जगद्ब्रम्ह ससर्ज प्रथमेऽहनि ।
शुक्लपक्षे समग्रन्तु तदा सूर्योदये सति ।।

अर्थात् : चैत्र शुक्ल के प्रथम दिन सूर्योदय के समय ब्रह्म ने जगत् की रचना की ।

## छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा

की ओर से

**चैत्र शुक्ल प्रतिपदा नवसम्वतसर 2080 एवं**

**आर्यसमाज स्थापना दिवस व रामनवमीं के**

**पावन अवसर पर समस्त प्रदेशवासियों एवं सुधि पाठकों को**

# हार्दिक शुभकामनाएँ ।

| आचार्य अंशुदेव आर्य | भुवनेश कुमार साहू | दीपक कुमार पाण्डेय |
|---|---|---|
| प्रधान | मंत्री | कोषाध्यक्ष |

सर्वे भवन्तु सुखिनः सुहृदो मदीयाः ,
सम्प्राप्य कीर्तिमतुलान्निजकर्मजाताम् ।
स्वस्थाभवन्तु शुभकर्मफलानि लब्ध्वा,
लाभप्रदो भवतु वो नव वत्सरोऽयम् ।।

शुभाकांक्षी
आचार्य कर्मवीर
सम्पादक, अग्निदूत

सम्पादक-प्रकाशक-मुद्रक : आचार्य अंशुदेव आर्य द्वारा छत्तीसगढ़ प्रान्तीय आर्य प्रतिनिधि सभा, दयानन्द परिसर, आर्यनगर, दुर्ग के वैदिक मुद्रणालय से छपवाकर प्रकाशित किया गया ।